सकसज्जा ।– भरताद्यै रभिदधे स्त्रीणां वास्तु वासकः ।
स्ववासकवशात्कान्तः समेष्यति गृहान्तिकं ।
सज्जीकरोति चात्मानं या सा वासकसज्जिका ॥
अनुभावाः कामक्रीड़ा वर्त्मेक्षणादि ॥

होत्कण्ठता ।– अनागसि प्रियतमे चिरयत्युत्सुका तु या ।
विरहोत्कण्ठता भाववेदिभिः सा समीरिता ॥
वेपथुहृत्तापादयश्चेष्टाः अत्र तु प्रिया भोग्य-
वस्त्वपादानार्थं विरचयति ॥

खण्डिता । उल्लंध्य समयं कृष्णे आगतेऽन्योपभोगवान् ।
भोगांकत्वेन चेत् ज्ञातो तदाहि खण्डिता मता ॥
विनानिस्वासतूष्णीभावा स्युह्यालापादयोविक्रियाः ।
स्वेनैव दत्ताया रात्रिः कस्याश्चित्तत्र यो हरिः ।
विस्मृतत्वात्तदर्थेऽभ्य श्रीराधा खण्डिता भवेत् ॥३२॥

ज्जा है ऐसा भरतादिक ने कहा है। अपना वासक वश से
कान्त गृह में आवेगा" इसलिये जो अपनेको सजाती है वह
सकसज्जा है। कामक्रीड़ा, मार्गदर्शन प्रभृति अनुभाव हैं।
रहोत्कण्ठता ।– प्रियतम के न आने पर उत्कण्ठित होकर
ाम होना विरहोत्कण्ठता है। वेपथु, हृदय में ताप प्रभृति
ष्टा तथा भोग्य वस्तु संग्रहादिक क्रिया हैं। खण्डिता ।– जो
ायिका समय बिता कर श्रीकृष्ण के आने पर, भोगचिन्हों से
ोर नायिका द्वारा उपभोग युक्त जानती हैं सो खण्डिता
ानना, निश्वासरहित, तूष्णीभाव, आलापादिक क्रिया हैं।

केचित्तु स्वदत्तां द्युतादिजितां वा रात्रिं विस्मृत्य खण्डितात्वं वर्णयन्ति। अन्ये त्वाहार्यत्वेन। अपरे तु स्वाधीनपतिकामेव। रसज्ञास्तु स्वाधीनरतिकात्व स्वरूपं खण्डितात्वाद्योऽवस्थाः। प्रकारभेदमाश्रित्य सर्वरसाश्रयत्वात्। यद्वा श्रीकृष्णेन श्रीराधायाः अवस्थान्तररसास्वादर्थं मिथ्यैव तत्तदावरणेन सर्वोऽपि रसः आस्वाद्यते यथा द्वारकेश्वरस्य श्रीरुक्मिण्यां।

श्रीदशमे यथा— मुखं च प्रेम संरम्भं स्फुरिताधरमीक्षितुं।
कटाक्षेपारुणापांगं सुन्दरभ्रुकुटीतटमिति॥

कलहान्तरिता— या सखीनां तु पुरतः पादयोः पतितं प्रियं।
रुषा निरस्य तपति कलहान्तरिता तु सा॥
तापादयः क्रियाः॥

श्रीकृष्ण ने रात में आने का संकेत किया था। परन्तु अन्य कोई नायिका के प्रेमवश होकर भूलगये। उनके न आनेपर श्रीराधा खण्डिता सी हो गयी॥३२॥

कोई कोई अपने द्वारा दी हुई और पाशक्रीडा चौसरखेल में जीते हुए श्रीकृष्ण के रात्रि भूलजाने से नायिका को खण्डिता वर्णन करते हैं। अपर आहार्य्य करके कहते है और कोई स्वाधीनपतिका नायिका को खण्डिता वर्णन करते हैं। रसज्ञगण स्वाधिनभर्तृका का स्वरूप तथा खण्डिता प्रभृति अवस्था हैं ऐसे भेद मानते हैं। कारण श्रीकृष्ण समस्त रसको आश्रय है। किम्बा श्रीकृष्ण ने श्रीराधा के अवस्थान्तर आस्वादन के लिये छल पूर्वक अवस्थान्तर से रस आस्वादन करते हैं। जैसे द्वारकानाथ का

अभिसारिका— याभिसारयते कान्तं स्वयं वाभिसरत्यपि ।
तमो ज्योत्स्नानुकूलेन गच्छंती साभिसारिका ॥

विप्रलब्धा— कृत्वा संकेतमप्राप्ते दैवात् कृष्णेति वल्लभा ।
व्यथमानान्तरा प्रोक्ता विप्रलब्धा मनीषिभिः ॥

स्वाधीनवल्लभा— स्वायत्तासन्नदयिता हृष्टा स्वाधीनवल्लभा ।
सलिलारण्यविक्रीडाकुसुमावचयादिकृत ॥२३॥

श्रीगीतगोविन्दे— रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपालयो
घंटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कवरीभरं ।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत ॥

श्रीरुक्मिणीदेवी में है। कलहान्तरिता।-जो सखीयोंके आगे चरण पतित प्रिय को क्रोधसे हटाकर तप्त होती है सो कलहान्तरिता है। जो अन्धकार तथा ज्योत्स्नानुयायी वेष से कान्त को अभिसार कराती और स्वयं अभिसार करती है सो अभिसारिका है। जो संकेत करती हुई भी दैववश श्रीकृष्ण न प्राप्त होने से व्यथित हृदय होती है सो विप्रलब्धा है अपने अधीन में श्रीकृष्ण रहने से स्वाधीनभर्तृका है। जलक्रीडा, वनविहार, कुसुमचयन प्रभृति चेष्टा जानना ॥२३॥

यथा गीतगोविन्द में मेरे स्तनों पर पत्रावली की रचना कीजिये। कपाल में चित्र तिलक, जघन मे काञ्ची रखिये, कवरी में पुष्प स्थापन करिये। हस्त में वलय समूह और चरण में नूपुर पहिराइये। इस प्रकार श्रीराधा कर्त्तृक कथित हो कर श्री कृष्ण

व्रजेन्द्रनन्दनास्वाद्या राधैवेति सुनिश्चितं ।
कृष्णस्तु राधिकास्वाद्य इत्येवं सुविनिर्णयः ॥
अन्यासां तत्प्रसादेन कृष्णस्यास्वादनं मतं ।

उक्तंहि हरिभक्तिसुधोदये—

योगिचित्तरमास्पर्शं सेवकादिमहोत्सवं ।
दूरस्थभक्तश्रवणकरजिह्वाश्रयं तथा ॥
योगिनश्चितेनैव रमायाः स्पर्शो नैवेत्यादिज्ञेयं ।

आल स्वैस्वरुपेण सदानुकूलया।

मंदारस्तवे— अपूर्ववद्विस्मयमादधानया ।
गुणेन रुपेण विलासचेष्टितैः
सदान वैवोचितया तव श्रिया ॥

वजोमाख्यं भगवद्भार्यया योग्याः कश्चिदप्सरसःस्त्रियः ।

अन्ये— रमावेशात्कदाचित्स्युः तः स्वेका पिंगलाऽभवत्
तदन्यासां महादोषो भगवद्भर्त्तृता स्मृतौ

ने ऐसा ही करने लगे ॥ श्री व्रजेन्द्रनन्दन कर्त्तृक आस्वादित राधा तथा श्रीराधा कर्त्तृक आस्वादित व्रजेन्द्रनन्दन है । और के श्रीकृष्ण का आस्वादन श्री राधिका जी की कृपासे जानना । हरिभक्ति सुधोदय में कहा है ।-

आलमन्दारस्तव में-- गुण, रूप, विलास, चेष्टाओं से लक्ष्मी आपके तुल्य है ।

भगवद् प्रिया के योग्य कोई कोई अप्सरा है । अप्सराओं मे रमाका आवेश होने से । उनों में एक पिंगला हुई है । और का, भगवद्भर्त्तृता होना महादोष है ॥ ३४ ॥

ततश्च श्रीनारायणादीनामवतारत्वे निश्चिते श्रीकृष्णस्य चावतारित्वे तद्भोग्यायाः श्रीराधायाश्चावतारित्वमर्थशास्त्राभ्यां निर्णीतं। विशेषस्तु स्वरूपनिरूपणे बोद्धव्यः।

अस्याः सख्यश्च दास्यश्च दूत्यश्चापि सहस्रशः।
काश्चित्सख्यस्तु शुद्धाः स्युः काश्चिद्दास्येन संगताः।
दौत्येन मिश्रिताः काश्चिदित्येका त्रिविधा मता॥

तथाहि।—सख्यरस एव॥१॥ दास्येन मिश्रिताः॥२॥ दौत्येनमिश्रिताः॥३॥ एवं सख्यास्त्रिया। दास्ये शुद्धाः॥१॥ सख्येन मिश्राः॥२॥ दौत्येन मिश्राः॥३॥ एवं दास्यास्त्रिधा प्रोक्ता॥ दौत्ये शुद्धाः॥१॥ दास्येन मिश्राः॥२॥ सख्येन मिश्राः॥३॥ एवं त्रिधा दूत्यं।

तुल्यरूपगुणाः सख्यः किञ्चिन्न्यूनास्तु दासिकाः।
दूत्यस्तु विविधा ज्ञेया जातिरूपादिभेदतः॥

सख्यस्तूक्ताः।— दास्यश्चतुर्विधा ज्ञेया समाज्येष्ठाकनिष्ठिका।
बहिरंगा पराश्चापि शुद्धहास्यरसादिकृत्॥

जब श्रीनारायण अवतार तथा श्रीकृष्ण अवतारी हुए और श्रीकृष्ण द्वारा भोग्या श्रीराधिका है तो अवश्य अर्थ तथा शास्त्रों से श्रीराधिका के अवतारित्व सिद्ध है। विशेष स्वरूपनिरूपण में जानना। श्रीराधा के हजार हजार सखी, दासी तथा दूती हैं। कोई कोई सखी शुद्ध हैं कोई कोई दास्य से मिलित, कोई दौत्य से मिलित हैं। शुद्ध सख्य, दास्यमिश्र, दौत्यमिश्र से सख्य तीन प्रकार है। शुद्धदास्य, सख्यमिश्र, दौत्यमिश्र से त्रिविध दास्य तथा शुद्ध दौत्य, दास्यमिश्र, सख्यमिश्र से तिन प्रकार दौत्य है। तुल्य

अथ दूत्यः ।— स्वयंदूत्याप्तदूति वा अमितार्था तथैव च ।
पत्रहारी निसृष्टार्था दूत्यः पञ्चविधा मताः ॥३५॥

तत्र स्वयंदूती— अत्युत्कण्ठा गलद्व्रीड़ा रागाधिक्येन मोहिता ।
चक्षुर्वचोऽगसम्भूतैः कर्म्मभिर्योजयेत्प्रियं ।
स्वयं दूतीति विख्याता नायकस्यातिमोहिनी ॥

तत्र चाक्षुषाः— नेत्रस्मितार्द्धमुद्रत्वेनेत्रान्तभ्रमकूणने ।
साचीक्षा वामदृक् प्रेक्षा कटाक्षाद्यास्तु चाक्षुषः ॥

नेत्रस्मितं— वैभवं रतिपते विदधतीः नन्दनन्दन पुरः कपटेन ।
आकलय्य नेत्रयुग्मं वृषभानुतनूजांचार्द्ध निमिलितं॥

नेत्रार्द्धमुद्रा— गर्गोक्तो चन्द्रसूर्य्यौ तु वर्त्तते कृष्णनेत्रयोः ।
इतीव राधिकानेत्रपद्मं चार्द्ध निमीलितं ॥

रूप गुण सख्य है । किञ्चित् न्यून दासिका तथा जाति, रूपादि भेदसे विविध प्रकार दूती है । सखी पहले कही हैं, शुद्ध हास्य रसादि कारक है। दास्य-समा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, वहिरंगा भेदसे चारि प्रकार हैं । स्वयंदूती, आप्तदूती, अमितार्था, पत्रहारी, निसृष्टार्था भेद से दूती पांच प्रकार है ॥३५॥

अति उत्कण्ठिता, लज्जारहिता, अत्यधिक राग से मोहिता, नेत्र, वाणी, शरीर उत्पन्न कर्म्मों से प्रिय को योजना करने वाली स्वयंदूती है । स्वयंदूती नायक की अत्यन्त मोहिनी है ॥, नेत्रस्मित, नेत्र का अर्द्ध मुद्रत्व, नेत्रान्त भ्रमण, तथा संकोचन, वक्रदृष्टि, वामदृष्टि, कटाक्ष प्रभृति चाक्षुष है । नेत्रस्मित-यथा--श्रीनन्दनन्दन रतिपति काम के वैभव धारण करते हुए, आगे वृषभानुनन्दिनी

नेत्रान्तभ्रमः— न दृष्टो रसराजस्तेन रहः केलिसंभ्रमः।
किं राधे कृष्णवदनेऽपांगं नटयसि ध्रुवं॥

नेत्रकूणनं—त्रपावृतं किञ्चिदवक्रचचंलदृगञ्चलराधिकया प्रवर्त्तितं।
निकुञ्जराजे प्रथमाधीनतां प्राप्ते दृशो विस्मयमानयानया॥

साचीक्षा— वक्रावलोकनं।

वामदृक्प्रेक्षा— सख्यनेत्रेण चापीय कृष्णस्य वदनाम्बुजं।
तरलेनैव राधे त्वमुन्मनीभवसे कथं॥

कटाक्षः— यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्त्तनं
तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते॥
अन्येत्यूह्यं॥ ३६॥

अथवाचिकाः— वाचिको ह्यर्थशब्दाभ्यां व्यंग्य एवात्र संमतः।
शब्दार्थाभ्यां तु यौ व्यंग्यौ श्रीकृष्णविषयौच तौ॥

को देखकर नेत्रयुगल अर्द्ध निमीलित किये। नेत्रार्द्ध मुद्रा—श्रीकृष्ण के दोनों नेत्रों में चन्द्र सूर्य्य दोनों विराजित हैं। ऐसा गर्गजी के कहने पर श्रीराधिका के नेत्र कमल अर्द्ध निमीलित हुए॥ नेत्रान्तभ्रम।- हे राधे क्यों श्रीकृष्ण बदन में अपांग नचाती हो देखिये उस अपांग से रहः केलि सम्भ्रम श्रीकृष्ण कुछ नहीं दिख रहे हैं। नेत्र कूणन।- लज्जावृत श्रीराधिका ने किञ्चित् अवक्र चञ्चल दृगञ्चलों को रोका। उससे प्रथम अधीन प्राप्त निकुञ्जराज श्रीकृष्ण विस्मित हो गये। वक्र अवलोकन करना साचीक्षा है। वामदृक्प्रेक्षा।-राधे सखी का नेत्रद्वारा श्रीकृष्ण मुख कमल पानपूर्वक तरलतापूर्वक क्यों उन्मना हो रही हो। कटाक्ष -नेत्र तारा का आना जाना विश्रान्ति वैचित्र्य से विवर्त्तन कटाक्ष है॥ ३६॥

विषयत्वं च कृष्णस्य द्विधात्र परिकीर्त्तितं ।

साक्षाच्च व्यपदेशाच्च श्रीकृष्णो विषयो मतः ॥

पुरस्थश्च तथा कृष्णः इत्येवं द्विविधो मतः ।

साक्षाच्छब्देन यो व्यंग्यः स कृष्णो बहुहेतुगः ।

गर्वाक्षेपैश्च याञ्चा वा इत्याद्या ह्यास्तु हेतवः ॥

गर्वेण शब्दोत्थव्यंग्य । श्रीकृष्णः । १ । गर्वेणार्थोत्थोव्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥२॥ आक्षेपेण शब्दोत्थो व्यंग्यः । श्रीकृष्णः । ३ । आक्षेपेणार्थोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥ ४ ॥ स्वार्थयाञ्चयाशब्दोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः । ५ । स्वार्थयाञ्चयार्थोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥ ६ ॥ परार्थयाञ्चयाशब्दोत्थो व्यंग्यः । ७ । परार्थयाञ्चयार्थोत्थव्यंग्यः ।८ व्यपदेशेन शब्दोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥९॥ व्यपदेशेनार्थोत्थव्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥ १० ॥ निकटस्थः कृष्णः शब्दोत्थो व्यंग्यः ॥ ११ ॥ निकटस्थः कृष्णोर्थोत्थव्यंग्यः ॥ १२ ॥ ३७ ॥

अर्थ तथा शब्द से व्यंग्य वाचिक है। शब्द अर्थ दोनों से व्यंग्य श्रीकृष्ण विषयक है। श्रीकृष्ण का विषय साक्षात् तथा व्यपदेश से एकविध है। पुरस्थ भेद से द्विविध है। साक्षात् शब्द से यो व्यंग्य श्रीकृष्ण से बहु कारणगत है ।-गर्व से शब्दोत्थ व्यंग्य श्रीकृष्ण, गर्व से अर्थोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, आक्षेप से शब्दोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, आक्षेप से अर्थोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, स्वार्थयाञ्चा से शब्दोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, स्वार्थयाञ्चाया से अर्थोत्थ व्यंग्य श्रीकृष्ण, व्यपदेश से शब्दोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, व्यपदेश से अर्थोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, निकट स्थित श्रीकृष्ण शब्दोत्थव्यंग्य, निकट स्थित श्रीकृष्ण अर्थोत्थव्यंग्य, है ॥ ३७ ॥

अथोदाहृतय:— गर्वेण शब्दोत्थो व्यंग्यो यथा।—

ललिता संगगर्विष्ठा देवीनां तु पुरः सरा।
ते हितं मापते गच्छ मा कुरु त्वं भुजंगतां ॥

पक्षे-विलाससंगेन देवीनां व्रजदेवीनां देवीणां क्रीडापराणां वा मापते! लक्ष्मीपते। पक्षे-मां गच्छ भुजंगतां सर्पतां धूर्त्ततां वा पक्षे-मा मां भुजं बाहुं गतां।

गर्वेणार्थोत्थोव्यंग्यः–सतीनां मूर्द्धाऽहं जगति विदिता गोकुलपते
सतोऽपांगश्रेणीं किमिति कुरुषे श्यामलतनुः।
इयं मार्गी सव्ये प्रसरति ततिः सापि कुपिता
समाक्रांते प्रान्ते मम सरसरंगे वनतटे ॥

पक्षे— सत श्रों सुन्दरीणां मुख्या ॥ ३८ ॥

आक्षेपेण शब्दोत्थो-मापते! गच्छ माध्वनमावृणु त्वं भुजंगतां।

व्यंग्य:— कुर्व्वन् सगरमात्मानं अभिव्यंजन्नराजते ॥

ललिता संग से गर्व प्राप्त देवीयों के समक्ष में अग्रसरा श्रीराधा हैं।

पक्षे-विलास अङ्ग से देवीयों का (व्रजदेवीयों) किम्बा क्रीड़ा-परायण गोपीयोंका।मापते! लक्ष्मीपते-पक्षे-"मा गच्छ भुजंगतां" सर्पता को मत कीजिये किम्बा धूर्त्तता मत कीजिये। पक्षमें-बाहुगता मत मुझको। गर्वेणोत्थव्यंग्य–हे गोकुल पते मे सती समूह की श्रेष्ठ जगत में विदिता हूं हे श्यामल शरीर! क्यों कटाक्षपात करते हो ॥ ३८ ॥

आक्षेपपक्षे हे मापते अध्वानं गच्छ अध्वानं मावृणु अन्यथा भुजंगतां सर्पतां कुर्व्वन् सगरेणात्मानं अभिव्यंजन् न राजसे न शोभां प्राप्स्यसि। व्यंग्यपक्षे-हे पते मा गच्छ अध्वानं मार्गं किन्तूत्पथं गन्तव्यमिति भावः। उत्पथे गत्वा मा मां आवृणु ततः भुजंगतां वाहुगतां कुर्व्वन् रलयोरैक्यात्

मां सरा वत्वंगलग आत्मा शरीरं यस्यास्तां मां अभिव्यञ्जन् राजसे किं अपि तु सर्वात्मना राजस इत्यर्थः ॥

आक्षेपेणार्थोत्थो व्यंग्यः ॥

> महारण्ये कुञ्जे सकलजनसंघैर्विरहिते
> विलुण्ठन् धूर्त्तस्त्व विहरसि सपुष्पं करगतं।
> इदं हस्त्या हाम्रे यदि हरसि हा हृदि गतं
> विदूरे गोष्ठं मे किमिह शरणं नीति रहिते ॥

याञ्चया शब्दोत्थोव्यंग्यः-सा याञ्चा स्यार्था परार्थाच।

आक्षेपसे शब्दोत्थव्यंग्य—आक्षेप पक्ष में-हे मा पते अपने रास्ते जाओ मेरा मार्ग मत रोको। नहीं तो आप सर्पभाव करके सगर (गरल सहित) शोभा को नहीं प्राप्त होंगे। व्यंग्यपक्ष मे-हे पति! मार्ग को मत जाओ। किन्तु उत्पथ मे जाओगे यह भाव है। उत्पथ मे जाकर मेरे को मत घेरो वाहुगत करते हुए। र, ल, का ऐक्य है इसलिये।

मैं कैसी हूँ स गलमात्मनं-गले में लगा हुआ आत्मा (शरीर) जिसकी ऐसी मुझको प्रकाशित करके शोभित पाते हो किम्वा सर्वात्मना से शोभित हो? आक्षेप से अर्थोत्थ व्यंग्य-हे कृष्ण!

तत्रस्वार्थो— नव्यया ललितया तवानया कृष्ण मञ्जुलतयाभि-
रक्षिता।
देव सेवनपराहमागता प्रस्फुरत्सुमन संविधे हि मां ॥

मञ्जु मनोहरालता तया स्थितां पालिता देवस्य सूर्य्यस्य पुष्पार्थमागत्येत्यर्थः। अतः प्रस्फुरन्तः सुमनसो यस्याः व्यंग्यपक्षे— हे कृष्ण! तव मञ्जुलता मनोरमता तया अभितः रक्षिता भर्त्तादितः। अतो देवस्य क्रीडाचतुरस्य सेवनपरा रसास्वादनपरा आगता। अतो मां विराजमानमनसं। याचयार्थोत्थो व्यंग्यः—
यथा—

पुष्पै देवी तु संपूज्या ह्येकाकिन्या मया सदा। ॥३६॥
सविधे पुष्पवाद्यस्ते मदीयस्त्वं विधीयता॥

यह वन वन की निकुञ्ज है तथा जन शून्य है। पुष्प को हाथ से तोड़ कर निर्भय घूमते हो समक्ष मैं इस मेरे हृदय हार को यदि हरण करोगे तो गोकुल गांव तो दूर नहीं है अनीति करोगे तो कौन शरण देगा। याञ्चासे शब्दोत्थव्यंग्य-स्वार्थ परार्थ भेद से याञ्चया दो प्रकार की है। स्वार्थ—हे कृष्ण! नवीना ललिता भली भाँति मुझको बचावेगी देवता की सेवा करने आयी हूँ। मनोहरलता द्वाराअभिरक्षित पुष्पोच्चयनार्थ, हे देव—श्री सूर्य्य। इसलिये जिसमें पुष्प प्रस्फुरित है। व्यंग्यपक्ष में—हे कृष्ण! भर्त्तादिकों से तुम्हारी मनोहरतामें रंगे हुए हैं। इसलिए क्रीड़ा चतुर, देव तुम पर रसास्वादन परायण होकर आये हैं। इसलिये विराजमान हैं मन बुद्धि जिसकी-ऐसी मुझको। याञ्चयार्थोत्थ व्यंग्य॥ ३६॥

परार्थयाञ्चयाशब्दोत्थो व्यंग्यः—

कृष्णसर्पेति शय्यान्ते वदन्ती विह्वला सखी ।
अतोऽद्य कालियहरं त्वामहं शरणं गता ॥

परार्थ याञ्चयार्थोत्थोव्यंग्यः—

न राधा भर्त्तारं क्वचिदपि च दृष्ट्या गृहगतं
समद्राक्षीन्नित्यं तव सरसमूर्तिर्विलिखती ।
तत्राप्येतद्वक्षो वहति रुचिरां तत्प्रतिकृतिं
ततः कृष्णप्रेम्णाहमपि विदधे दौत्यमखिलं ॥

व्यपदेशेन शब्दोत्थो व्यंग्यः—

जल्पव्याजेन केनापि व्यपदेशोऽत्र कथ्यते ॥
पद्मिनी घनरसेन समन्तात् त्यजते यदि मरालक त्वया ॥
सेव्यते च यदि चन्द्र चित्रिणी त्रिचित्रायाश्रेणी आवली ॥

व्यपदेशेनार्थोत्थो व्यंग्य— चन्द्रावलीत्यर्थः ॥

मधुपैश्च न च घ्रातांत्यत्रकानूतस्य मञ्जरी ।
रसज्ञकोकिलस्त्वं वै भ्राम्यसेऽत्र कथं वने ॥

परार्थ याञ्चार्थोत्थव्यंग्य—हे कालिय मर्दन ! शैय्या पर कृष्ण-सर्प आया है ऐसी सखी व्याकुल होकर कह रही है । इसलिये मैं आज तुम्हारी शरण में जा रही हूँ ॥ परार्थयाञ्चार्थोव्यग्यं—हे श्रीकृष्ण ! श्रीराधा ने गृह में रहते हुए अपने स्वामी को कभी एक नजर नहीं देखती किन्तु सर्वदा तुम्हारी मूर्त्ति हृदय में अंकित्त करती रही है । तुम्हारा यह हृदय भी मनोहर राधा प्रतिकृति धारण कर रहा है इसलिये हम भी प्रेम से समस्त दौत्य करती हैं ॥

निकटस्थ: श्रीकृष्ण: शब्दोत्थोव्यंग्य:—

शृण्वतोऽपि हरेर्मत्वा व्याजादश्रुतिवत्किल ।
जल्पोऽन्यत: स्थिते जन्तौ निकटस्थेन कथ्यते ॥

यथा— आहूतास्मि कथं चूतपुष्पाय भ्रमरस्वनैः ।
प्रमोदयति मामेष शोकहर्त्ताऽर्जुनो ह्यलं ॥

निकटस्थकृष्णोऽर्थोत्थव्यंग्यः—

हरिष्णुः कृष्णोऽयं सकलयुवतीनां धृतिकृतिं
यशो लोके ख्यातं कुसुमितलतावेष्टिततनुः ।
महारण्ये कुञ्जे ग्रथितशतवीरुत्सु पतिता
कथं मोदये शीघ्रं कथय लतिके कोऽत्र शरणं ॥

अथाङ्गिकाः

अङ्गुलिस्फाटनं चाग्रे व्याजेनांगस्य संवृतिः ।
दोर्मूलनाभिवक्षोजप्रकाशो व्याजतो भवेत् ॥

व्यपदेश से शब्दोत्थव्यंग्य-कोई जल्प व्याज से व्यपदेश होता है।

हरि को सुनते हुए भी छल से न सुनने के भाव प्रकाश करना अन्यत्र स्थित जीव को निकट स्थित कहना जल्प है। निकटस्थ श्रीकृष्ण अर्थोत्थ व्यंग्य यथा।-यह श्रीकृष्ण समस्त युवतीयों के धैर्य, तथा कर्मको हरण करते है। यश त्रिजगत में फैला हुआ है। कुसुमित लता से हमारे अंग वेष्टित हो गयी हैं। हाय इन महानिर्जन कुञ्ज में शत शत लता गुल्म के जालों पर पड़ गयी हूं मै कैसे उससे मुक्त हो पाऊँगी। हे लतिके ! कहो यहाँ

कवरीमोक्षसंरोधौ कर्णकण्डूयनं तथा।
तिलकालिंगने सख्याः पदाभूलेखनं तथा ॥
अंगस्य स्फोटनं जृम्भा दंशः स्वाधरगो भवेत्।
वेशक्रिया भ्रुवो घूर्त्तिः सखीताडनमेव च ॥
दृक् पथे तस्य गमनं हारादीनां तु गुम्फनं।
इत्याद्यस्त्वांगिकाः स्युरभियोगा हरौ किल ॥४०॥

अथाप्तदूती— कायवाङ्मानसैः क्वापि विस्रंभं न भिनत्ति या।
स्निग्धा च वाग्मिनी दूती सा चाप्ता विनिगद्यते ॥

अमितार्था— द्वयोरेकतरस्यैव भावं ज्ञात्वा तु मेलयेत्।
राधाकृष्णौ विदग्धौ या सामितार्थातुभण्यते ॥

पत्रहारिणी— सन्देशमात्रं कृष्णस्य श्रीराधाया स्तथैवच।
नयेत्परस्परं वापि सा भवेत्पत्रहारिणी ॥

कौन शरण होगा। अंगुलि बजाना, छल से अंग का ढ़ाकना, छल से बाहु मूल, नाभि, वक्षोज दिखाना, कवरी से ताला खोलना, संरोध, कर्ण कण्डयून, तिलक, आलिगंन, पद से भूलिखन, अंग मरोड़ना, जभाँई, अधरदंशन, वेशक्रिया, भ्रू नेत्र घूर्णन, सखी-ताडन, कृष्णका नेत्र पथ में जाना, हारगुंथन, प्रभृति आंगिक, अभियोग है ॥ ४० ॥

शरीर, वाणी, मन से कही भी विश्वास (भरोसा) नहीं छोड़ने वाली मधुरभाषिणी चतुरा दूती आप्तदूती है। दोनों के किम्वा एक के भाव जानकर दोनों विदग्ध को मिलाती है सो अमितार्था है। कृष्ण के सन्देश मात्र तथा राधा के सन्देश मात्र, किम्वा परस्पर

निसृष्टार्था— अन्यवंचनकार्य्यादिभारस्वीकरणा द्वयोः।
युक्तयोभौ घट्टयेद्वा या सा निसृष्टार्था निगद्यते॥
अथदूतीनां स्वरूपभेदाः॥
शिल्पकारस्त्रियो धात्री दैवज्ञस्य तथा स्त्रियः।

धात्रेयी तापसी चैव वनदेवी सखी तथा॥ धात्रेयो धात्र्याः पुत्री। तापसी-तपस्विवेषवती। वनदेवी-वनाधिष्ठात्री देवता। सख्यः समानशीलाः। परिचारिका-लवंगमञ्जरी, लवंगपुष्पा, भानुमती स्वरसाद्याः। अथ दौत्यं द्विधा वाच्यं व्यंग्यं च। तदपि वाच्यं व्यंग्यं च साक्षात्परम्परा च॥

अथसामान्यतः— कलाकौशलमुत्साहो भक्तिश्चित्रज्ञता स्मृति।
कर्म्म — माधुर्य्यं नर्म्मविज्ञानं वाग्मिता चेति तद्गुणाः४१

के सन्देश लेती हैं सो पत्र हारिणि। पति प्रभृति को वञ्चन करने का जो भार है उसको स्वीकार करती है तथा दोनों का मिलाती है सो निसृष्टार्था है। अब दूतीयों के स्वरूप भेद कहते हैं। शिल्पकारस्त्री, धात्री, दैवज्ञस्त्री, धात्रेयी, तापसी वनदेवी सखी है। धात्रेयी-धात्री की पुत्री, तपसी-तपस्वि वेशवती, वनदेवी-वनाधिष्ठात्री देवता, सख्य-समान स्वभाविका, परिचारिका-लवंगमञ्जरी, लवंग पुष्पा, भानुमती, स्वरसा प्रभृति, है। दौत्य दो प्रकार है। वाच्य, व्यंग्य, । तो भी वाच्य तथा व्यंग्य-साक्षात, परस्परा से दो भेद है। सामान्य कर्म्म-कलाकौशल, उत्साह, भक्ति, चित्रज्ञता, माधुर्य्य नर्म्म, विज्ञान, वाग्मिता प्रभृति गुण, हैं॥ ४१॥

दोनों के प्रेम तथा गुण समूह का दोनों के प्रति कीर्त्तन,

अथ विशेष प्रेमवतीनां—

उभयोः प्रमगुणायोः कीर्त्तनं तत्तदप्रतः।
आशक्तिकारिता चैव नर्म्मास्वादनमेव च।
अलंकृत्यादिकरणं कृष्णे राधासमर्पणं।
तथा कृष्णार्पणं तत्र स्वहृदुद्घाटनं तथा।
अभिसारो द्वयोश्चैव छिद्रसंरोधनं तथा।
पत्यादेर्वञ्चनं शिक्षा काले संगमनं तथा।
व्यजनादिभिश्च सेवा च सन्देशप्रेषणं तथा।
उपालम्भो द्वयोरेव नायकाप्राणरक्षणं।
इत्यादीनि तु कर्म्माणि ज्ञेयानि सुविशारदैः॥

अथासां परस्परभेदा॥

स्वपक्षः प्रतिपक्षश्च सुहृत्पक्षो इतित्रिधा।
सर्वांशेनानुकूलो यः सः स्वपक्ष इतीरितः॥

करना दोनों का दोनों में आसक्त कराना, दोनों का नर्म्म आस्वादन करना, अलंकारादिक निर्म्माण, श्रीकृष्ण में राधा को समर्पण तथा श्रीराधा में श्रीकृष्ण अर्पण, अपना हृदय उद्घाटन, दोनों का अभिसार कराना, दोष गोपन करना, पति प्रभृतिओं को वञ्चन करना, शिक्षा, समय पर मिलाना, व्यजन प्रभृतिओं से सेवा, सन्देश भेजना, दोनों का उपालम्भ, नायक प्राण रक्षण प्रभृति कर्म्म सखियों के जानना। अब परस्पर भेद वर्णन करते हैं। स्वपक्ष, प्रतिपक्ष, तथा सुहृत्पक्ष भेद से तीन प्रकार के हैं। सर्वांश में अनुकूल कारक स्वपक्ष, सर्वांश में प्रतिकूल कारक प्रतिपक्ष,

प्रतिकूलस्तु सर्वांशे प्रतिपक्षतया मतः ।
प्रातिकूल्येऽनुकूले च सुहृत्पक्षो ह्युदासकः ॥
अजातशत्रुनासिद्धा श्रीराधायाः स्वरूपतः ।
श्रीराधागुणकोट्यंशो नान्यत्र परिदृश्यते ॥ ४२ ॥
ईर्ष्यया तु विपक्षाः स्युश्चन्द्राद्याः स्वत एव हि ।
तत्कृतं तु विपक्षत्वं गतं राधागणेष्विति ।
यथा युधिष्ठिरराज्ञि कौरवादिकृतं मतं ।
स्वपक्षस्तु द्विधा कृष्णे समो विषम एव च ।
राधाकृष्णौ समौ प्रेम्णा स समः परिकीर्तितः ।
न्यूनाधिकतया प्राप्तौ यस्य वैषम्यभाक् स तु ।
कृष्णस्य भक्तवर्गेषु द्वेषाद्या नोचिता इति ।
ये वदन्ति रसज्ञास्ते अपूर्वा इति मे मतिः ॥
श्री भागवते बहूनां गन्धोऽप्येषां न संगतः ।

…तकूल तथा अनुकूल कारक से रहित सुहृत्पक्ष है। श्रीराधा की …जात शत्रुता सिद्ध है। श्रीराधा के गुणों का कोटि अंश भी …यत्र …खता नहीं है ॥ ४२ ॥

चन्द्रावली प्रभृति ईर्षा से विपक्षा तथा श्रीराधिका गणों में … करती हैं जैसे युधिष्ठिर महाराज में कौरवादिओं का ईर्षा है। …पक्षनायिका दो प्रकार की हैं। श्रीकृष्ण में तथा श्रीराधिका में समान प्रेम, और छोटे बड़े भाव से विषमता प्रेम है। श्रीकृष्ण के भक्तवर्गों में द्वेषादि उचित नहिं है किन्तु रसपुष्टि के लिये जो रसज्ञगण वर्णन करते हैं सो अपूर्व है। व्रजभक्तों की गन्ध भी

कन्दर्पो मूर्त्तिमान् रत्या कृष्णराधानुगः सदा ।
अंशेन वा विभूत्या वा इतरत्र विराजते ।

यथा— लक्ष्मी कटाक्षेण सदा वर्त्तते जीवराशिषु ।
ईशे त्वंशेन मर्य्यादावित्येवं परमार्थता ॥

अथ विभावेषूद्दीपनाः ।
कायिका वाचिका हार्दा एतत्संबंधिनस्तथा ।
तटस्था अपि विज्ञेया एवं पञ्चविधा मताः ॥
श्रीराधायां तथा कृष्णे ज्ञातव्यो रसवेदिभिः ॥४

तत्र कायिकाः— वयो रूपं च लावण्यं सौन्दर्य्यमभिरूप्यता ।
मार्दवं सौकुमार्य्यं च मण्डनं नृत्यमेव च ।
नामादिकं च विज्ञेया आलम्बनगता इमे ॥

और कहीं नही है। कारण मूर्त्तिमान् कन्दर्प, रतिके साथ सर्वदा श्रीकृष्णराधा के अनुगत हैं। अन्यत्र अंश तथा विभूति विराजित हैं। लक्ष्मी कटाक्ष से जीवराशि में रहती है।

अब विभावों में से उद्दीपन।—श्रीराधा, तथा श्रीकृष्ण में कायिक, वाचिक, हार्द, एतत्सम्बन्धि, तटस्थभेदसे पाँच प्र उद्दीपन है ॥४३॥

वय, रूप, लावण्य, सौन्दर्य्य, अभिरूप, मार्दव, सुकुमा मण्डन, नृत्य, नामादिक कायिक आलम्बन हैं। गुञ्जा, मयूरपुच्छ, भूषण, वनमाला, चन्दन, भूषणशब्द, शिल्पकौशल, वीणा, गैरि- कादि धातु प्रभृति सम्बन्धी हैं। इनके लक्षण द्वितीयोल्लास में कहे हैं। जो नहीं कहे हैं सो कहते हैं। श्रीराधिका की वय

संबन्धिनः— गुंजाशिखण्डिपिञ्छानि भूषणं वनमालिका।
चन्दनं भूषणकाणः शिल्पकौशलमेव च।
वीणा धात्वादिका ज्ञेया इमे सम्बन्धिनो वुधैः

एतल्लक्षणं द्वितीयोल्लासादावुक्तं। न यत्रोक्तं तदुच्यते। तत्र श्रीराधाविषयकं वयः।

यौवनं तु वयः सन्धिरित्येवं द्विविधं मतं।
यौवनं— नूतनं परिपूर्णं च यौवनं द्विविधं मतं।
प्रतियौवनमेतस्या चेष्टितानि पृथक् पृथक्॥
नूतनं— ईषच्चपलनेत्रान्तं स्मरस्मेरमुखाम्बुजं।
सगर्वजरजो गण्डमसृणाग्रारुणाधरं॥
लावण्योद्भेदरम्यांगं विलसद्भावसौरभं।
उन्मीलिताकुंरकुचमस्फुटांगकसन्धिकं॥
इत्येवं यौवनं तत्र वर्त्तते सेवया सदा।
अपेक्षते मृदुस्पर्शं सहते नोद्धतां रतिं॥
सखाकेलिरसास्वांगसंस्कारकजितादरात्।

प्रकार की हैं। यौवन, तथा वयःसन्धि। नूतन, परिपूर्ण भेद से यौवन दो प्रकार का है। प्रत्येक अवस्था में भिन्न भिन्न चेष्टा जानना। नूतन यौवन-यथा-नेत्रभाग ईषत् चञ्चल, मन्दहास्ययुक्त मुखाम्बुज, गर्व बिन्दु से युक्त गण्डस्थल, अरुणाधर, लावण्य शोभित अंग, भाव सौरभ से विलास प्राप्त, उन्मीलितकुच, अस्फुट अंगसन्धि विशिष्ट नवीन यौवन सेवा के वास्ते विराजित है। मृदु स्पर्श न सहना, उद्धत रति का अपेक्षा न करना, केलि(?)

इत्यादि चेष्टितानीह विज्ञेयानि सुबुद्धिभिः ॥४४॥

यथा ।— विस्तारी स्तनभार एष गमितो न स्वोचितामुन्नतिं
रेखोद्भासि तथा वलित्रयमिदं न स्पष्ट निम्नोन्नतं
मध्यो स्यादाजुरायतार्घ कपिशा रोमावली दृश्यते
रम्यं शैशवयौवनव्यतिकरोन्मिश्रं वपुर्वर्त्तते ॥

पूर्णं ।— स्तनौ पीनौ तनुर्मध्यः पाणिपादस्य रक्तिमा ।
ऊरूकरिकराकारावंगव्यक्तांगसन्धिकं ।
नितम्बो विपुलौ नाभि गंभीरा जघनं घनं
मानाधिक्यं सखीस्नेहोऽपराधस्यासहिष्णुता ।
रतिकेलिष्वनिभृता चेष्टते गर्विता रहः ।

वयः सन्धिः ॥— बाल्ययौवनयोः सन्धिर्वयः सन्धिरितीर्य्यते ।

संस्कार में आदरता प्रभृति चेष्टा जानना ॥ ४४ ॥

यथा ।—स्तनभार विस्तृत होकर यथोचित उन्नति को नहीं प्राप्त हुआ है त्रिवली स्पष्ट निम्नोन्नत नहीं है । मध्य देश अभी क्षीण नहीं हुआ । शैशव तथा यौवन दोनों के मिलन होने से श्रीराधा के अंग सुन्दर हो रहे हैं । पूर्ण ।—स्तन का उच्च थात विस्तारित होना, मध्य देश में क्षीणता तथा हाथ पाऊँ मे रक्तिमा होना, ऊरु देश हस्ति शुण्ड सदृश, व्यक्त अंग सन्धिक, नितम्ब की विपुलता गभीर नाभि, निविड जंघा, व्यक्त रोमावली प्रभृति गुण विशिष्ट पूर्ण यौवन है । अधिक मान, सखी में स्नेह, अपराध न सहना, रति के लिये न डरना, गर्व प्रभृति चेष्टा है । बाल्य यौवन की सन्धि ही वयः सन्धि है । नाम-यथा ।—हे कुरंगाक्षि,

नाम ।— वृन्दावने कुरंगाक्षि पश्य कृष्णं कुरंगकं ।
इत्युक्तेऽनंगघूर्णांगा राधिका संबभूव ह ॥
धारा धारागता चेयं वर्ष्टा नवकामुकं ।
इत्युक्ते न पूर्णोऽसौ श्रीकृष्णो घूर्ण इवातत् ॥

भूषणं ।— शृंगारोऽलंकृतिश्चेति भूषणं द्विविधं मतं ॥४५॥

अथशृंगारः ।— आदौ स्नानमथो सुरुचीरतिलके नेत्राञ्जनं कुण्डलं
नासालंकृति पुष्पहारचिकुरान् शिञ्जत्तथा नुपूरं ।
लेपं चन्दनसंभवं स्तनपटीं क्षुद्रावली बिभ्रती
ताम्बुलं मणिकंकणं चतुरतां श्रीराधिका राजते ॥

अलंकृतिः ॥— अलंकृति द्विधा ज्ञेया प्रायिकी नित्यसंस्थिता ॥
प्रायिकी चेच्छया प्राप्ता सख्याः स्वस्य प्रियस्य च
अलंकृति लौकसिद्धा विज्ञेया रसिकै गुरोः ॥

अथनित्या ।— नित्यं कुण्डलकंकणे च तिलकं चूडामणिं बिभ्रती
पादांगुष्ठविभूषणं कलयभं केशान्तभूषां तथा ।

वृन्दावन में कृष्ण कुरंग को देखो। सखी के ऐसा कहने पर श्रीराधिका अनंग से घूर्णायमान शरीर होगये। धारा धारा यह शब्द सुन कर श्रीकृष्णचन्द्र घूर्णायमान हो गये। भूषण।— शृंगार, अलंकार, भेद से भूषण दो प्रकार के हैं॥ ४५ ॥

प्रथम स्नान अनन्तर सुन्दर तिलक, नेत्रोंमें अञ्जन, कुण्डल, चन्दन, नासिका अलंकार, पुष्पहार, केशकलाप, शब्दायमान नुपूर, लेपन, स्तन में कञ्चुलिका, क्षुद्रावली धारण, ताम्बुल, मणि कर्कण, प्रभृति शृंगार है। अलंकार प्रायिक, नित्यसं

पादालंकरणं तथा वलयभं मालां च मौक्तफलीं
कण्ठालंकरणेन सर्वरसिता विभ्राजते राधिका ॥

मुक्तामाला एकसूत्रिणी केशान्ते पद्माकृतिरलंकरणं वेणी द्विरेफी तिलकावतंस घ्राणाम्वुज शोत्रविभूषणार्नं, हारावली काचन काञ्चिनीवि र्यांगदेकंकण रत्नमुद्रे, गांगेयरत्नान् वत नपुरौ द्वौ पादागुलीनां वहुधा विभूषा। चतुर्द्दशोक्तानि विभूषणानि ॥४६॥

सौवर्णी चान्दनी पौषी सौत्री मणिमयी तथा।
कार्पूरी षड् विधा स्तातालकृंतिः कृष्णनिर्म्मिता।

यथा— क्वचित्कर्पूरैस्तां क्वचिदपि सुवर्णैर्मणिगणैः
क्वचिन्नानावर्णैः सकलपटखण्डैः स्वरचितैः।
क्वचित्पुष्पैः सर्वैर्मलयजपरागैः प्रियतमा
मलं कुर्व्वन्कृष्णो विहरति सजाम्वुनदरुचिं ॥

स्थित भेद से द्विविध हैं। सखी, आप, कि म्वा प्रिय के इच्छा से प्राप्त लोक विद्ध प्रायिक है। नित्य-यथा।— श्रीराधिका नित्य कुण्डल, कंकण, तिलक, चूड़ामणी, पादागुंष्ठ विभूषण, वलय, केशभूषा, पादालंकार, चरण में वलय, मुक्ताफलमाला कण्ठालंकार से विराजमान है। मुक्तामाला एक डोरा में, तथा पद्माकार अलंकार केशान्त में, बीच में काढ़ी हुई वेणी, प्रभृति जानना॥४६॥

सुवर्णमयी, चन्दनमयी, पुष्पमयी, सूत्रमयी, मणिमयी कर्पूरमयी, भेद से षड् प्रकार अलंकार श्रीकृष्ण निर्मित है। यथा। श्रीकृष्ण कहीं पर कर्पूरमय अलंकारों से, कहीं सुवर्णतथा मणिमय अलंकारो से, कहीं नानावर्ण के वस्त्रखण्ड से, कहीं पुष्पमय

अथ नुभावाः

एते तु स्वातन्त्र्येणैवोद्दीपनाः, नायकाश्रयत्वेन रसरूपाः।

भावं मनोगतं साक्षात्स्वहेतुं व्यञ्जयन्ति ये।

ते तु भावा इति ख्याता भ्रूविक्षेपस्मितादयः॥

सत्वजास्तु दशैव स्युर्भावाद्या इतिनिश्चितं।

तदन्तः पातिलीलाद्या कथ्यन्ते सत्वजा इति॥

एत एव ह्यलङ्काराः स्त्रीणां विंशतिराहु ताः।

ते चतुर्द्धा चित्तगात्रभाक् वुद्धयारंभणसंभवाः॥

तत्रचित्तजाः-- भावो हावश्च हेला च शोभा कान्तिस्तथैव च।

दीप्तिः प्रागल्भ्यमाधुर्य्ये धैर्य्यौदार्य्ये च

चित्तजाः॥४७॥

अलंकारों तथा चन्दनमय अलंकारोंसे जाम्बुनद सुवर्ण सदृश प्रियतमा श्रीराधाको अलंकृत करते हुए विहार कर रहे हैं। अब अनुभाव कहते हैं। यह सब स्वतन्त्र से उद्दीपन तथा नायक आश्रय से रसरुप है। मनोगत भावको तथा साक्षात् कारण को जो प्रकाश करता है सो भाव है। भ्रू विक्षेप, स्मित-प्रभृति जानना। भावादिक दश सत्व से उत्पन्न हैं। उनके अन्तः पाती लीलादिक सत्वज से ऊठे है। स्त्रियों के २० अलंकार है। अलंकार चित्तभाक् गात्रभाक् वुद्धिभाक् आरंभण भेदसे चार प्रकार के है। भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, प्रागल्भ्य, माधुर्य्य, धैर्य्य, औदार्य्य चित्तज है॥४७॥

तत्रभाव—: निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया ॥

तदुक्तंप्राचीनैः— चित्तस्याविकृतिः सत्वं विकृतेः कारणे सति ।
तत्राद्या विक्रियाभावो वीजस्यादिविकारवत् ॥

यथा— मणिपत्रिका विवाहे तु कुर्व्वन्ती साधनादरं ।
आरब्यते सखीहास्ये स्मेरवक्त्रा तु राधिका ॥

अत्र तु पूर्वं शैशवेन रसानभिज्ञ चित्तस्य पाञ्चालिका परिणयादरं वीक्ष्य हसन्त्यां सख्यां स्मितं कुर्व्वती रब्यते ततश्च हासशंकादीनां सम्भवात् प्रथमभावावतारः ॥

अथहावः— ग्रीवारेचकसंयुक्तो भ्रूनेत्रादिविकाशकृत् ।
भावादीषत्प्रकाशो यः स हाव इति कथ्यते ॥

यथा— धात्रीवचोभिर्व्वनिमर्मगर्भैः क्षणं सरोषस्मितमात्तलज्जा ।
पाञ्चालिकाद्वन्द्वमयी जयत्सा श्रीकृष्णपक्षीयसखीजनस्य ॥

भाव-निर्विकार चित्त में प्रथम विक्रिया भाव है। प्राचीन गण कहते हैं। विकार का कारण होते हुए भी चित्तका अविकृति सत्व है। उस निर्विकार चित्त में बीज के आदि विकार सदृश विक्रिया ही भाव है। मणि प्रतिमा का विवाह आदर से कराती हुई श्रीराधा सखीगण द्वारा हास्य करने पर हास्यमुखी होकर शोभित हो रही हैं। यहाँ पर पहिले शैशव के कारण रस में अनभिज्ञ चित्त थी। सम्प्रति पुत्तलिका के (गुडया) परिणय में आदर देखकर सखीगण हास्य करने पर आप मन्दहास्य करने लगी। अथ हाव-ग्रीवा रेचक युक्त भ्रूनेत्र प्रभृति विकाशकारी तथा ह्रस्वभाव से ईषत् प्रकाश हाव है। मर्म गर्भ धात्री की बातों से क्षणकाल रोष के साथ लज्जोता

अत्र चित्तविकाराणां रोषहर्षलज्जादीनां कुटिलेक्षणास्मितादिभिरीषत्प्रकाशनादयं हावः ॥

हेला— नानाविकारैः सुव्यस्ता शृंगाराकृतिसूचकैः ।
हाव एव भवेद्धेला ललिताभिनयात्मिका ॥

यथा— शृण्वती वेणुमाधुर्य्यं कपोलं पुलकाञ्चितं ।
बालापि राधिका धत्ते नृत्यन्नेत्र कुचद्वयी ॥४८॥

शोभा— सा शोभा रूपभोगाद्यै र्यत्स्यादंगविभूषणैः ।

यथा— सुनिर्भराश्लेषसषंडमालिकां
विश्लिष्टकेशां स्खलन्तं प्रियां हरेः ।
उद्घूर्णनेत्रं विसतांगरागिणीं
स्मरामि कुञ्जाज्ज्वजन्तद्रवद्रसां ॥

होकर श्रीकृष्णपक्षीय सखीजनों की पाञ्चालिका युग अर्पण की
यहाँ पर चित्त का विकार रोष हर्ष लज्जादिओं का कुटिलदृष्टि तथा स्मितादि से ईषत्प्रकाश से हाव है। हाव शृंगार सूचक नाना विकार से व्यक्त होकर ललित अभिनय रूप हेला होती है। श्रीराधा वेणु माधुरी सुनकर कपोल पुलकायमान, नेत्र तथा स्तन का नर्त्तन करने लगी ॥ ४८ ॥

रूप भोगादिओं से तथा अंग के विभूषण प्रभृति से जो होती है सो शोभा है। माला की आश्लेष कारिणी, विश्लिष्ट केशा, घूर्णित नेत्रा, अंगराग से युक्त ऊज्ज्वल रूप द्रवाय मान रस हृदय शालिनी, कुञ्ज से निकलती हुई श्रीराधा को स्मरण करता हूँ। फिर मन्मथ क्रीडा से उज्वल शोभा ही कान्ति है। रति शेष में श्रीहरि को फिर

कान्तिः— शोभैव कान्तिराख्याता मन्मथाप्यायनोज्वला।

यथा— प्रकुर्वती तु रत्यन्ते सर्वकामात्मकं हरिं।

रसलक्ष्म्याश्रितपदां राधिकामर्चयाम्यहं ॥

अत्र रतान्तव्याप्तायाः अपि पुनः रतिजनकत्वेन कामोप्यायितत्वं।

दीप्तिः— कान्तिरेव वयो भोगदेशकालगुणादिभिः।

उद्दीपितातिविस्तारं प्राप्ता चेद्दीप्तिरुच्यते॥

यथा— शरतु ज्योत्स्नाक्रान्ते तपनतनयाभूपरिसरे

नयन्ती श्रीकृष्णं मधुररसभावस्य विततिं।

अतो राधाराब्धा मनसिजचमूभिः सविनयं

वयो लक्ष्म्याक्रान्ता मम मनसि मादं वितनुचे॥

अतः सर्व्वैः कृत्वा सुरतोत्साहरूपा दीप्तिः ॥४६॥

प्रागल्भ्यं— निःशङ्कत्वं प्रयोगेषु प्रागल्भ्यं रसिकैः स्मृतं॥

समस्त कामना करने वाली रसलक्ष्मी आश्रित चरणयुगल श्रीराधिका की अर्च्चना करता हूं। यहाँ पर रतान्त क्रीडा में व्याप्त होने से भी फिर रति जनकत्व कामप्यायित्व है। कान्ति ही वय, भोग, देश, काल, गुणादिकों से अत्यन्त उद्दीपित को विस्तार करने से दीप्ति है। यथा राधा शरतच्चन्द्र की ज्योत्स्ना से व्याप्त जमुना भूमि परिसर में श्रीकृष्ण को मधुररस भाव के समूह में लाने वाली है इसलिये काम की सेना की समूह से आराध्य तथा वय लक्ष्मी से आक्रान्त है जो कि मेरे मन में आनन्द विस्तार कर रही है ॥४६॥

प्रयोगादिकों में निःशङ्कत्व प्रागल्भ्य है। यथा-प्रिया श्रीराधा

यथा—दन्तदंशसहितं नखक्षतं केशकर्षणनखक्षतादनु ।
कुर्व्वती मधुरसंगरे प्रिया प्रातिकूल्यमिव संदधेऽधिकां ॥

माधुर्य्यं— माधुर्य्यं नाम चेष्टानां सर्वावस्थासु चारुता ।

यथा— दधाना कृष्णांशे स्वकरकमलं नृत्यरहिता
निजश्रोण्यां बाहुं त्रुटितवलयं चानृजुरदं ।
पदाग्रे कृष्णस्य प्रच जितकुचा श्वासभरतः
त्रिभंगिन्येषाहो त्रिगुणितरसाभादतितरां ॥

त्रिगुणत्वं च त्रिभंगेन नायकत्वं स्वस्मिन् श्रीकृष्णश्च । धैर्य्यं—
औदार्य्यं—स्थिरा चित्तोन्नतिर्यातु तद्धैर्य्यमिति कीर्त्तितं ॥ स्पष्टं ।
औदार्य्यं विनयं प्राहुः सर्व्वावस्थानुगं बुधाः ॥ स्पष्टं

अथगात्रारम्भः

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितं ।
मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोकललिते तथा ।
विकृतिश्चेति विज्ञेया योषितां दश गात्रजाः ॥

दन्ताघात के साथ नखक्षत, तथा केशकर्षण प्रभृति करती हुई मधुर काम युद्ध में अत्यन्त प्रतिकूल्य को धारण करने लगी। समस्त अवस्थाओं में चेष्टाओं का चारुता ही माधुर्य्य है यथा श्रीकृष्ण के स्कन्ध में नृत्यरहिता श्रीराधा अपना कर कमल, निज श्रेणि देश में श्रीकृष्ण की बाहु, श्रीकृष्ण के चरण के आगे सुन्दर चरण धारण करती हुई श्वासवेग से चञ्चल स्तनी तथा त्रिगुणरस से त्रिभंग आकार हो गयीं त्रिगुणत्व अर्थ—त्रिभंग से मैं कृष्ण हूँ और श्रीकृष्ण राधा है। स्थिर चित्तोन्नति धैर्य्य है।

लीला— प्रियानुकरणं लीला रम्यै वेषक्रियादिभिः ।

यथा श्रीदशमे- आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुकुर्व्वती ।
वेणुं क्वणन्ती क्रीडन्ती मन्याः संशन्ति
साध्विति ॥ ४० ॥

विलासः— प्रियसंप्राप्तिसमये भ्रूनेत्राननकर्म्मणां ।
तत्कालिको विशेषो यः स विलास इतीरितः ॥
स्पष्टं

विच्छित्तिः— आकल्पकल्पनाल्पाऽपि विच्छित्तिः कान्ति पोष-
कृत् ॥ स्पष्टं

विभ्रमः— श्रीकृष्णप्राप्तिवेलायां मदनावेशसम्भ्रमात् ।
विभ्रमो हारमाल्यादि भूषास्थान विपर्य्ययः ॥
स्पष्टं ।

स्पष्ट अर्थ । समस्त अवस्था में अनुगत विनय औदार्य्य है । अब गात्रारम्भ कहते हैं । लीला, विलास, विच्छित्ति विभ्रम, किलकिञ्चित्, मोट्टायित, कुट्टमित विव्वोक, ललित विकृत भेद से दश प्रकार गात्र जात भाव स्त्रीयों के हैं । मनोहर वेष, क्रियादिओं से प्रिय का अनुकरण ही लीला है । यथा—दशम में—॥ ४० ॥

प्रिय की प्राप्ति समय भ्रू-नेत्र, मुख के कर्म्मों की तत्कालीन जो विशेषता सो विलास है । स्पष्ट अर्थ है । आकल्प कल्पन से अल्प कान्ति पोषणकारिणी विच्छित्ति है । श्रीकृष्ण के प्राप्ति समय में मदनावेश संभ्रम से हार, माल्य प्रभृति भूषणस्थान से विपर्य्यय विभ्रम है । गर्व, असूया, अभिलाष, अश्रु, क्रोध, स्मित,

किलकिञ्चितं— गर्वासूयाभिलाषश्रुक्रोधस्मितभियां यदा ।
संकरीकरणं हर्षात्तदेव किलकिञ्चितं ॥

यथा— गृहेषु श्रयन्ती गुरुजनमथावागंणगतं
प्रियं योषिद्वेषं सभयहृदया वीक्ष्य पुरतः ।
वयस्ये तिष्टत्वं क्षणमिति वदन्ती स्मितरुषी
दधाना श्रीराधा नयनजनिताश्रुर्विलसति ॥

स्त्रीवेशात् स्मितं अतिष्ठेति गर्व्वः अभिलाषा च प्राकट्ये भयं । असमयागमने क्रोधासूये ॥

मोट्टायितं— कृष्णस्मारवार्त्तादौ हृदयोद्भवभावः ।
स्वाभिलाषप्रकटनं मोट्टायितमितीरितं ॥

कुट्टमितं— केशाधरादिग्रहणे मोदमानेऽपि मानसे ।
दुःखितैव वहिः कुप्येद्यत्र कुट्टमितं हि तत् ॥

भावों का हर्ष से संकर (मिलन) होना किलकिञ्चित है । यथा— गृहों में गुरुजन सोने लगे । युवती वेष धारण पूर्वक अपने आंगन में आज श्रीकृष्ण आये हुए हैं । हे वयस्ये ! क्षणकाल अब मेरे आंगन में रहिये । इस प्रकार भय तथा हर्ष से हास्य क्रोध को धारण करते हुए श्रीराधा नयन अश्रु से व्याप्त हो गये ॥ यहाँ पर स्त्रीवेश के कारण स्मित, अतिष्ठ इति गर्व, अभिलाष-प्रकाश में भय, असमय आने मे क्रोध तथा असूया है । कृष्ण के स्मरण वार्त्तादिकों में स्वअभिलाष प्रकटन हृदयोद्भव भाव मोट्टायित है । श्रीकृष्ण कर्तृक केश तथा अधरादिक ग्रहण करने पर अन्तर में आनन्द बाहिर क्रोध कुट्टमित है ।

विव्वोकः - इष्टाऽप्यनादरो गर्वान्मानाद्बिव्वोक ईरितः ॥४१॥

यथा ।— अर्पयामास कृष्णस्य विपक्षजनसंनिधौ ।

श्रीकृष्णदत्तामाघ्राय मालां श्रीराधिका ततः ॥

अवज्ञयादानात् गर्वेण बिव्वोकः ॥

प्राप्तां विपक्षय साम्येन वीटिकां हरिणार्पितां ।

प्रिया गृहीत्वा हस्तेन चेटिकायै ददौ पुनः ॥

समदानेन मानाद्बिव्वोकः ॥

अथ ललितं ।— विन्यासभंगिरंगानां भ्रूविलासमनोहरा ।

सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तदुदीरितं ॥

यथा चरणकमल कान्त्या देहलीमर्चयन्ती

कनकमयकपाटं पाणिना कम्पयन्ती ।

कुवलयमयमदणा तोरणं पूरयन्ती

वरतनुरियमास्ते मन्दिरश्येव लक्ष्मीः ॥

गर्व तथा मानसे प्रिय वस्तु का अनादर बिव्वोक है ॥ ४१ ॥

श्रीराधिका ने विपक्षसखीजनों के समक्ष में श्रीकृष्ण की दी हुई माला को सूंघ कर फिर कृष्ण के लिये अर्पण कर दीया गर्व से अवज्ञा पूर्वक ग्रहण करने से बिव्वोक है । यथा ।।— श्रीराधा ने हरि से अर्पित ताम्बुल प्राप्त होकर विपक्षी की सदृश हस्त में लेकर किन्तु फीर दासी के लिये देदिये ॥ मान से समदान बिव्वोक है । विन्यास भंगि रंगों का भ्रू विलास से मनोहर सकुमार होने पर ललित है । श्रेष्टतनु श्रीराधा मन्दिर लक्ष्मी सदृश विराजित है । तथा ।।—श्रीचरण कमल कान्ति से देहली को पूजा

विहतं ।— ईर्ष्यया मानलज्जायामदत्तं योगिमुत्तरं
क्रियया व्यज्येते यत्र विहतं तदुदीरितं ॥

ईर्ष्यया यथा ।— राधे मा ज्ञापयेदानीं न जामि व्रजमन्दिरं ।
इत्युक्तवन्तं कृष्णं सा ददर्श कुटिलभ्रुवा ॥
न गन्तव्यमिति नोक्तं कुटिलदर्शनादेव व्यजनाद्
विहतं ।

मानेन— शुकं वुभुक्षितं दृष्ट्वा नालापन्ती तु राधिका ।
मुक्ताफलानि खनसि निदधे मानिनी प्रिया ॥५२॥
मादभाषणेन शुके भक्षणाव्यंजनाद् विहतं ।

लज्जया— कृष्णास्य संनिधौ राधे गन्तव्यमिति वादिनीं ।
वदं चन्द्रो हृदयं मौनेनाप्युत्तरं व्यधात् ।
लज्जया हृदयस्थव्यञ्जनाद्विहतिः ॥

कर रही हैं तथा हस्त द्वारा सुवर्ण मय कवाट को कम्पायमान कर रही है। और नेत्र द्वारा नील कमल की शय्या बिछाय रही है। ईर्ष्या से तथा मान लज्जा होने से जो उत्तर न देना किन्तु क्रियाद्वारा प्रकाश है सो विहत है। ईर्षासे- हे राधे मैं जनाआ व्रजमन्दिर मे नही जाऊँगा, ऐसा श्रीकृष्ण कहने पर श्रीराधिका कुटिलभ्रू से देखने लगी। मानसे यथा ॥-भोजन करने का इच्छुक शुक पक्षिको देख कर श्रीराधिका अलाप न करती हुई मुक्ताफल बीनने लगी ॥ ५२ ॥

लज्जा से ।-यथा श्रीकृष्ण का संन्निधि में हे श्रीराधे चलना चाहिये ऐसा कहने वाली सखी को भी मौन भाव से भी उत्तरं

अथ पौरुषसात्विकाः—

शोभा विलासो माधुर्य्यं धैर्य्यं गाम्भीर्य्यमेव च ।
ललितौदार्य्यतेजांसि सत्वभेदास्तु पौरुषाः ॥

नायकप्रकरणे उक्ताः ॥

अथ वागारम्भः

आलापश्च विलापश्च संलापश्च प्रलापकः ।
अनुलापापलापौ च सन्देशश्चातिदेशिकः ।
निर्देशश्चोपदेशोऽपदेशश्च व्यपदेशकः ॥
एवं द्वादशधा प्रोक्ता वागारम्भा विचक्षणैः ॥

आलापः— चाटुप्रियोक्तिरालापः
यथा— कास्त्र्यंग ते कलपदामृतवेणुगीत इत्यादि
विलापः— विलापो दुःखजं वचः ॥
संलापः— उक्तिप्रत्युक्तिमद्वाक्यं संलाप इति कथ्यते ॥
उत्तिष्ठाम इत्यादि ॥ ५३ ॥

टिनी । अब पुरुष सम्बन्धी सात्विक कहते हैं । शोभा, विलास, माधुर्य्य, धैर्य्य, गाम्भीर्य्य, ललित, औदार्य्य, तेज, सत्वभेद प्राप्त पौरुष भाव हैं। जो कि नायक प्रकरण में कहे गये हैं। अब वागारम्भ कहते हैं । आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, व्यपदेश भेद से द्वादश प्रकार है। चाटु तथा प्रियोक्ति आलाप है। यथा-हे अंग कौन स्त्री आपका कलपदामृत वेणुगीत सुनकर मोहित होकर सतीत्व से स्खलित नहीं होती है ।दुःखमय वाणी विलाप है। उक्ति प्रत्युक्ति युक्त वाक्य संलाप है। उठिये आगे नाव में इत्यादिक है ॥ ५३ ॥

प्रलापः ।।— अर्थालापः प्रलापः स्यात् ।

यथा ।— मुखं तु चन्द्रप्रतिमं तिमं तिमं
स्तनौ च पीनौ कर्म्मठिनौ ठिनौ ठिनौ ।
कटिर्विशाला जघना घना घना
अहो विचित्रा तरुणी रुणी रुणी ।।

अनुलापः ।।— अनुलापो मुहु र्वचः ।।
राधा राधा न हि न हि कृष्णप्राणः
पीतं पीतं नहि नहि राधाकान्तिः ।
कृष्णः कृष्णो नहि नहि राधा सम्पत्
कुञ्जः कुञ्जो नहि नहि विश्रामाऽयं ।।

अपलापः ।।— अपलापस्तु पूर्वोक्तस्यान्यथा योजनं भवेत् ।।
त्वमेव भद्रा मम चन्द्रता च
त्वमेव गोवर्द्धिनसंगिनी श्रीः

अर्थालाप प्रलाप है। यथा—मुख किन्तु चन्द्र सदृश है स्तन कठिन स्थूल है। विशाल कटी, तथा निविड जंघा है। अहो तरुणी विचित्रा है। यहाँ पर प्रथम पंक्तिमें तिमं तिमं द्वितीय पंक्तिमें ठिनौ ठिनौ, तृतीय में घना घना, चतुर्थ में रुणी रुणी शब्द प्रलाप वाची है। वारम्वार वोलना अनुलाप है। यथा ।।— श्रीराधा, श्रीराधा नहि नहि कृष्ण प्राण है। पीत है पीत है नहिं नहिं राधाकान्ति है। कृष्ण है कृष्ण है नहिं नहिं राधा सम्पत्ति है कुञ्ज है, कुञ्ज है नहिं नहिं विश्राम है। यहाँ पर राधा राधा पीत पीत, कृष्ण कृष्ण, कुञ्ज कुञ्ज प्रभृति वारम्वार उक्ति है।।

प्रसादयन् व्याजपदेन राधां
दद‌ातु कृष्णः स्वरसं सदा वः ॥

अत्र कल्याणचन्द्रपर्व्वतवाचिशब्दैः सखीचन्द्रावल्योः कल्पने-
नालापः गोवर्द्धनो गोपः ।

सन्देशः ॥— सन्देशस्तु प्रोषितस्य स्ववार्त्ताप्रापणं भवेत् ।
स्वनिकटादन्यत्र स्थितस्य ॥५४॥

अतिदेशः— सोऽतिदेशस्तदुक्तानि मदुक्तानीति यद्वचः ।

यथा— प्रस्थिते तु वनं कृष्णे जीवितं तु कथं भवेत् ।
इतीदं कृष्णवचनं तस्या एव निधारयत् ॥

निर्देशः— निर्देशस्तु भवेत्सोऽयमहमित्यादिभाषणं ॥

उपदेशः— यत्तु शिक्षार्थवचनमुपदेशः स कथ्यते ॥

तुम भद्रा हो । तुम ही मेरे चन्द्र हो । तथा तुम ही गोवर्द्धन संगिणी लक्ष्मी हो । इस प्रकार छल पदों से श्रीराधिका को प्रसाद कारी कृष्ण सर्वदा तुम सब को स्वआनन्द प्रदान करें । यहाँ पर भद्रा-कल्याण, चन्द्र, गोवर्द्धन पर्वत है अर्थान्तर में ।—भद्रा-भद्रा सखी, चन्द्रता-चन्द्रावली, गोवर्द्धन-चन्द्रावली के पति गोवर्द्धन नामक मल्ल है । प्रोषित नायिका के अपना वार्त्ता प्राप्त होना सन्देश है । पूर्वोक्तिका अर्थान्तर योजना होना आलाप है ॥५४॥

तदुक्ति अतिदेश है । यथा-श्रीकृष्ण वन में जाने पर जीवन धारण कैसे होगा । श्रीराधा के श्री कृष्ण वाणी ही जीवन है ऐसा निर्द्धार हुआ है । सो यह तथा मैं हम् इत्यादि बोलना निर्देश है । शिक्षा के लिये जो वचन सो उपदेश है । और का अर्थ कहना

अपदेशः- अन्यार्थवचनं यत्र सोऽपदेश इतीरितः ॥
व्यपदेशः- व्याजेनात्माभिलाषोक्ति र्व्यपदेशइतीर्य्यते ॥

अथ बुद्धयारम्भाः

बुद्धयारम्भास्तथाप्रोक्ता रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।
पदाविन्यासभंगी स्यैव रीतिरित्यादयः ॥

अथसम्बन्धिनः- कायवचोमनसां संसर्गिणः सम्बन्धिनः ॥
तटस्थाश्चन्द्रादयः सात्विका व्यभिचारिणश्चोक्ता॥५५

अथमधुराऽरतिः स्थायी

सा च पूर्वं निरुपितेदानीं तत्प्राप्तिपरिपाटीनिरुप्यते।
निसर्गादभियोगाच्च ससर्गादभिमानतः।
उपमाध्यात्मविषयैः प्रादुर्भूता भवेद्रतिः ॥

अपदेश है। छलपूर्वक अपना अभिलाष कहना व्यपदेश है। अथ रीति वृत्ति प्रभृति बुद्धयारम्भ हैं। पदविन्यास, भंगी प्रभृति रीति, कैशिकादिक वृत्ति है॥ शरीर, वाणी, मन से संसर्गि सम्बन्धि है। चन्द्रादिक तटस्थ है। सात्विक तथा व्यभिचारी कहा है॥ ५५॥

अब-मधुररति-वर्णन करते हैं। वही पहिले ही निरुपण की गई है। अब उसकी परिपाटी निरुपण करते हैं। निसर्ग, अभियोग, संसर्ग, अभिमान, उपमा, अध्यात्म, विषयों से रति प्रादुर्भूत होती है। इसका अर्थ यह है—प्राकृत रति की तरह भगवद्रति का जन्म नहीं है। किन्तु प्रादुर्भूत है। किम्वा साधनों से और का संसर्ग है। गंगा द्वार सदश जानना। इसमें प्रक्रिया यह है।

अयमभिसन्धिर्नहि प्राकृतरतिवदुत्पद्यते । अपि तु प्रादुर्भूतै र्नान्यसंसर्गिनीसाधनैर्भवेत् । गंगाद्वारवत् तत्रेयं प्रक्रिया

मधुराख्यो भक्तिरसो नित्यस्तथा च मधुराख्या रतिः स्थायीभावः नित्यः, सादित्वे स्थायित्वव्याघातः भक्तिरसो रसत्वव्याघातश्च । ततश्चोभौ नित्यौ तथालम्बनमपि श्रीकृष्णः श्रीराधा च तथा च श्रीकृष्णे श्रीराधायां च निसर्गादिसप्तसाधनैः सप्त प्रकारवती रतिरनुभूयते परस्परं तथोभयपरिवारे च सादिपरिवारेषु पुनः प्रादुर्भावः॥५

तत्रनिसर्गः— जन्म यस्मिन्नभावेन कारणस्यैव दृश्यते ।
रतिस्तत्र तु विज्ञेयः संस्कारः पूर्वसंभवः ॥

अभियोग— अभिनिवेशस्तत्परत्वमिति यावत् ।

संसर्गः— सामग्रीकुलरुपाद्याधिक्येन सम्बन्धः । सामग्र्याद्याधिक्येन यथालोके सम्बन्धः संबन्धाद्रति- स्तथा व्रजे श्रीकृष्णे राधिकायां च परस्परमन्यस्य ना रति र्भवेत् ॥

मधुर नामक भक्तिरस नित्य तथा मधुरा नामक स्थायी रति नित्या है। आदि कहोगे तो स्थायीत्व हानि है। भक्तिरस का रसत्व भी हानि है। इससे दोनों नित्य हैं। आलम्बन, और श्रीकृष्ण, श्रीराधा भी नित्य है। इस प्रकार श्रीकृष्ण में किम्वा श्रीराधिका में निसर्गादि सप्त साधनों से सात प्रकार की रति अनुभव होती है ॥ ५६ ॥

निसर्गः-बिनाकारण से ही जिसका जन्म है सो पूर्वसंस्कार विशेष निसर्ग है। तत्परत्व हि अभियोग है। सामग्री, कुल, रुपादि आधिक्य से सम्बन्ध संसर्ग है। जैसे लोक में। इस प्रकार व्रज में

अभिमानः- इदमेव मम प्रियं नान्यदिति निश्चयोऽभिमानः ॥

उपमा- यथा कथञ्चित् सादृश्यं प्रियाया उपमा स्मृता ॥

यथा- मयूरपिच्छेन श्रीराधायां श्रीकृष्णस्य रतिः केशसादृश्यात् ।

अध्यात्मं- स्वान्तकरणप्रमाणमात्रं

यथा- दुष्कुन्तस्य शकुन्तलायां श्रीराधाकृष्णयोः परस्परं ॥५७॥

विषयाः शब्दादयः पञ्च ।

तत्र शब्दः- केनाप्युच्चरितं राधेवर्णद्वयमिति व्रजे ।
घूर्णीचकार श्रीकृष्णं व्यात्या तूलमिव च्चणं ॥

स्पर्शः- यस्याः स्पर्शो भवद्बन्धो श्रीदामन्नुत्सवे मम ।
तस्यास्तु दर्शनेऽतीव वलते मानसं पुनः ॥

श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा में परस्पर की रति है। यह मेरा प्रिय और कोई वस्तु नहीं है सो निश्चय अभिमान है। प्रिया का यथा कथञ्चित समानता सादृश्य है। जैसे मयूर पिच्छ से श्रीराधिका में श्रीकृष्ण की रति है। स्वान्तःकरण प्रमाण मात्र ही अध्यात्म है। जैसे दुष्यन्त का शकुन्तला में। ऐसा ही श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण का परस्पर जानना ॥ ५७ ॥

शब्दादिक विषय हैं। शब्द-व्रज में किसी नें राधा ऐसा वर्णद्वय उच्चारण किया तो पवन से तूल के समान श्रीकृष्ण को घूर्णायमान कर दिया। स्पर्श-हे श्रीदाम उस उत्सव में जिसका स्पर्श हुआ था उससे दर्शन के लिये मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। रूप-भोग्यत्व ज्ञान से शून्य होने से भी आज रसिक श्रीकृष्ण श्रीराधा रूप का दर्शन करके अपनी आत्मा को पतंग के बराबर

रूपं- भोग्यत्वज्ञानशून्योऽपि राधारूपं विलोक्य सः
आत्मानं रसिकः कृष्णः पतंगी कुरुते भृशं ॥

रसः- कृष्णस्य राधिकायाश्च विचित्रं मानसं यतः ।
अन्योन्यदत्ततामबुलरसमास्वाद्य माद्यति ॥

गन्धः- राधागन्धं समाघ्राय भृंगत्वैव तपो बहु ।
मन्यमानस्त्वतितरां मुमुदे सखि माधवः ॥ ५८ ॥

अथोभयोर्निर्णयः

रसरत्यो रधिष्ठाने श्रीराधा कृष्ण एव च ।
भोक्तारौ च तथा ज्ञेयाववधीभूतयोस्तयोः ॥
पूर्वं बीजं ततश्चेक्षुरसः पश्चाद्गुडो भवेत् ।
खण्डश्च सर्करा चेति सिता पश्चात्सितोपला ॥
रतिप्रेमा तथा स्नेहो मानः प्रणय एव च ।
रागोऽनुरागो भावश्च क्रमस्त्वेवंविधो मतः ॥

करने लगे। रस-श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा के मानस विचित्र है। परस्पर परस्पर को ताम्बुल रस देकर उन्मत्त हो रहे है। गन्ध-हे सखि! श्रीराधिका के अङ्गगन्ध प्राप्त होकर अपने को भ्रमर को सदृश मन में अत्यन्त मोद करने लगे ॥ ५८ ॥

अब उभय का निर्णय करते है-रस तथा रति का अधिष्ठान श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा है सीमा प्राप्त रस तथा रति का उभय भोक्ता भी है जैसे पहिले बीज, तदनन्तर इक्षुरस, पिछे गुड़, खाँड, शर्करा, तदतन्तर सिता पिछे सितोत्पला है तैसे-रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग अनुराग, भाव क्रमसे जानना ॥

सितोपलावधित्वेन रसस्य परमास्थितिः ।
तथा राधावधित्वेन रतेस्तु परमास्थितिः ॥
रसकार्य्ये गुड़ादौ तु मन्यते रसता यथा ।
तथान्यत्रापि विज्ञेया तारतम्यतया बुधैः ॥
यथा जलं स्वभावेन मधुरं शीतलं द्रुतं ।
आश्रयस्य विभेदेन नानात्वं याति तत्वतः ॥
श्रवणादौ तथा ज्ञेयं न भक्तेस्तु कदाचन ॥
यथा खण्डस्य भोगस्य कृतित्वेऽपि रतिर्नहि ।
कर्म्मणा मानसं किञ्चित् सुखमेवाभिमन्यते
ज्ञानिनां कर्म्मिणां चैव क्रीयमाणेऽपि कीर्त्तने ।
तद्वत्सुखं तु विज्ञेयं न तु भक्तिः कदाचन ॥
वीजमिक्षुरसो मूलं तन्मन्त्र क्रियात्र तु ।

जैसे सितोपला पर्य्यन्त रस की परमस्थिति है तैसे ही श्रीराधा के अवधि पर्य्यन्त रति की परमस्थिति है। रसकार्य्य में गुड़ादि में जैसे रसता स्वीकृत है तैसे और जगह में भी तारतम्य से जानना। आश्रय की भिन्नता से स्वाभाविक मधुर शीतल तथा तरल जल—नाना प्रकार का हो जाता है वास्तविक नाना भेद नहीं है—वैसे ही भक्ति-श्रवणादि में प्राप्त होकर बहु प्रकार हो जाती है। जैसे खाँड़ का कृतित्व मे रति नहीं है तैसे कर्म से मन किञ्चित सुख को मानता है। इस प्रकार ज्ञानि तथा कर्म्मियों में कीर्त्तनादिक करने पर भी अल्प सुख है किन्तु भक्ति कभी नही है। जैसे वीज, इक्षुरस मूल है। गुड़ में जैसे रस है तथा

गुड़े यथा रसादत्तिस्तथा मोक्षचतुष्टये ।
ततोऽधिकः शर्करासु रसः प्रायोऽनुभूयते ।
नित्याधिकारिणस्तद्वद्देवत्वेनापि विश्रुता ॥५६॥
सिता ततोऽधिका ज्ञेया स्वच्छत्वादवधीकृता ।
तद्वदीशोपासना तु सा भक्तिरवधीकृता ॥
सर्वावतारबीजत्वं सर्वेशित्वं तथैव च ।
सर्वानन्दकदम्बत्वं सर्वसेव्यत्वमेव च ॥
इत्यादि गुणवत्वेन सेव्यः कृष्णोऽत्रसंमतः ॥
सितोपलातः सर्वात्मा नान्यः स्याद्रसवैभवः ।
तथा श्रीराधिकानिष्ठो रतेर्वैभव ईष्यते ।
अयं सर्वविचारोहि प्रवर्त्तकतयेष्यते ।
वस्तुतस्तु रतेरुपं शुद्धोद इति कीर्त्तितः ॥

भक्षण करते हैं ऐसा मोक्ष में सुख जानना । उससे शर्करा में जैसे रस का अनुभव है ऐसे नित्याधिकारि देवताओं में जानना ॥ ५६ ॥

स्वच्छता के कारण जैसे उससे अधिक सिता है तैसे ही ईश्वर उपासना है । ईशता यथा ।—श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के कारण सबका ईशित्व, समस्त आनन्द कदम्ब, सर्व सेव्यत्व गुण-विशिष्ट सेव्य है । जैसे सितोपला से रसका वैभव और नहीं है तैसे श्रीराधिकानिष्ठ रति का और अवधि नही है । यह सब विचार प्रवर्त्तक से होता है । वास्तविक रति का रुप शुद्धोदक है ।

तस्याश्रयस्तु राधेव बिन्दुबिन्दुतयान्यतः ।
प्रेमास्तु वैभवाः प्रायस्नेहाद्याः सद्भिरीरिताः ॥

अथप्रेमा ।— नाशापचयशून्यं यत्सत्यपि ध्वंसकारणे ॥ ६० ॥
यद्भावबन्धनं यूनो स प्रेमा विनिगद्यते ।

यथा — मया क्षिप्तः कृष्णो बहुभणितिभिर्गालिबसहितैः ।
तथा चोक्तश्चायं गुरुषु परिपाटी परिकरैः
तथापि श्यामात्मा विसृजति नमे मार्गपदवीं ॥
उत्तमः प्राकृतो मध्यः स प्रेमान्यत्र दृश्यता ॥

अथस्नेहः ।— आरुह्य परमां काष्ठां दर्शनस्पर्शसंस्तवैः ।
हृदयं द्रावयन्प्रेमा स्नेह इत्यभिधीयते ॥

यथा-सुधाकरे ।— उभे तदानीमुभयोस्तु चित्ते
कदूष्णनिश्वासचरिष्णुकेन ।

उसका आश्रय श्रीराधा है । अन्यत्र बिन्दु बिन्दु भावसे जानना, प्रेम का वैभव स्नेहादि है एसा पण्डित गण की उक्ती है ॥ ६० ॥

प्रेम ।—ध्वंसका प्रचुरकारण होते हुए भी जो नाश तथा अपचय नही होता है सो दोनों का भावबन्धन प्रेम है । मैंने गाली के साथ बहुत कठोर वाणी से श्रीकृष्ण को आक्षेप किया, परन्तु प्रीति न हटी । उत्तम, प्राकृत, मध्यम भेद से तीन प्रकार प्रेम है अन्यत्र देखिये । प्रेम दर्शन स्पर्श स्तवादि से परम सीमा को प्राप्त होकर जब हृदयको द्रव करता है सो स्नेह जानना ॥ रस सुधाकर में ।—दोनों उस समय दोनों के चित्त में कदूष्ण

एको करिष्यन्ननुरागशिल्पी
मानोष्मणैव द्रवतामनैषीत् ॥ ६१ ॥

प्रेममैत्री त्रैविधोमतः ।—

तैलवद्घृतवच्चैव मधुवच्च स्मृतो बुधैः ।
अल्पादरमयस्नेहो तैलवत् प्रविशेद्धृदि ।
आदरातिशयेनैव भावान्तरसमन्वितः ।
आस्वाद्यतां तु संगच्छन्स स्नेहो घृतवन्मतः ॥
परस्परस्वकीयत्वातिशयेन समन्वितः ।
स्वतः प्रकटमाधुर्य्यो रसान्तरसमाहृतिः ।
स स्नेहो मधुवज्ज्ञेयो व्रजेष्वेवासुनिश्चलः ।

मानः ॥— यस्तु स्नेहानुबन्धेन स्वातन्त्र्यहृदयंगमः ।
बध्नाति भावकौटिल्यं सोऽयं मान इतीर्य्यते ।

यथा ॥— विष्णुपुराणे–"काचित् भ्रूभंगुरं कृत्वा ललाटफल"

निश्वास बहाने लगे। मान का उत्ताप से दोनों के चित्त द्रव हो गया ॥ ६१ ॥

प्रेम तीन प्रकार का है। तैलवत, घृतवत् मधुवत्, है। अल्प आदर मय स्नेह तैल की सदृश हृदय में प्रवेश करता है। आदर के अतिशय से तथा भावान्तरसे युक्त होकर आस्वादको प्राप्त होने से जो स्नेह सो घृतवत् है परस्पर स्वकीयभावका अतिशय से युक्त तथा स्वतः ही प्रकट माधुर्य्यशाली रसान्तर से समाहारक स्नेह मधुवत् है व्रजवासियों में मधुस्नेह है। मान ।— जो स्नेह अनुबन्ध से स्वतन्त्र हृदयगंम होकर भाव कौटिल्य को धारण

सुधाकरेवा-ऽपोहितुं लोचनतो मुखानिलैरपारयन्तं किलपुष्पजरजः।
पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी॥६२
अत्रापराधकल्पनायामपि प्रेमकल्पितस्वातन्त्र्येणावज्ञारूपं
भावकौटिल्यं।

प्रणयः- बाह्यान्तरोपचारै र्यत्स्नेहमानोऽपि कल्पितैः।
वध्नाति भावविस्रंभं सोऽयं प्रणय उच्चते॥
मानो दधानो विस्रम्भं प्रणयश्चोच्यते बुधैः।

यथा-उक्तं श्रुतौद्धतपणं सखीभ्यो विवदयति प्रेयसी कुंचितभ्रूः
कण्ठं कराभ्यामवलम्व्य तस्य मुखं पिधत्ते स्व- कपोलकेन॥
अत्र भाववन्ध मानापराध कौटिल्ययोरनुवृत्तौ कण्ठालम्बनोप-
चारेण विस्रम्भः॥ कारणं प्रणयस्यास्य विस्रंभः कथितो बुधैः।
विस्रम्भे तु मैत्र्यं सख्यं च॥ ६३॥

करता है सो मान है। यथा —विष्णुपुराण में।— कोई गोपी
भ्रूधनु कुटिलता पूर्वक ललाट में इत्यादि॥ ६२॥

यहाँ पर अपराध कल्पना में भी प्रेम कल्पित स्वातन्त्र्य
अवज्ञा रुप ही कौटिल्य है। प्रणय—जो स्नेह मय भाव कल्पित
बाह्य तथा अन्तर उपचारों से भाव गौरव को धारण करता है
सो प्रणय है। मान अत्यन्त गौरव को धारण करने से प्रणय है।
यथा—प्रेयसी श्रीराधा कुंचित भ्रूसे सखियों के कर्ण में औद्धत
रूपा बोल रही है तथा हस्तों से कण्ठ अवलम्बन पूर्वक
उनके मुखस्वकपोल से ढाक रही है यहाँ पर भावयुक्त मान तथा
अपराध कौटिल्य दोनों का अनुवृत्ति होने से कण्ठालम्बन उपचार
से विस्रम्भ है॥ ६३॥

राग:— दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव व्यज्यते ।
प्रणयातिशयेनैव स राग इति कथ्यते ॥
कुसुंभनीलीमञ्जिष्ठारागभेदेन स त्रिधा ॥

कुसुम्भराग:- कुसुम्भरागः स ज्ञेयो यश्चित्ते सज्जति क्षणात् ।
अतिप्रकाशमानोऽपि शोभते च यथोचितं ॥

नीलिराग:- नीलिरागस्तु संलग्नो वहि र्नाति प्रकाशवान् ।
नापैति च मनाक् कापि श्यामादिषु विराजते ।

मञ्जिष्ठा— अन्यसापेक्षता हीनः कान्त्या संवर्धते सदा
मञ्जिष्ठराग एषः स्याद्राधाकृष्णाश्रयः सदा
श्रीराधायां तथा कृष्णे नान्यत्रास्ति कदाचन ॥६४

अनुराग:— राग एवानुरागः स्यादनुभूतं नवी भवत् ।
क्षणे क्षणे चमत्कारकारकोऽतिशयात्मकः ॥

राग-चित्त में अत्यन्त दुःख होने पर भी सुख करके होता है तथा जो प्रणय का अतिशय है सो राग है। कुसुम्भ, नीली मञ्जिष्ठा भेद से तीन प्रकार है। जो चित्त में क्षण काल में सज्जित होता है तथा अत्यन्त प्रकाशमान होकर भी यथोचित् शोभा को प्राप्त होता है सो कुसुम्भ राग है। बाहर न प्रकाशवान तथा जो दूर नहीं होता है सो नीलीराग जानना। अन्य सापेक्ष्य से रहित कान्ति से वर्द्धनशील मञ्जिष्ठ राग है। यथा श्रीराधा कृष्ण का श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण में मञ्जिष्ठा राग है अन्यत्र नहीं है ॥ ६४ ॥

भावः— अनुरागः स्वसंवेद्यदशां प्राप्य प्रकाशितः।

यावदाश्रयवृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते ॥

स भावः रूढोऽधिरूढश्च ।

रूढः— उद्दीप्ताः सात्विका यत्र स रूढ इति भण्यते ।

अधिरूढः— रूढोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टतां ।

यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरूढो निगद्यते ॥

मोदनो मादनश्चासावधिरूढो द्विधोच्यते ॥

आलम्बने तु सत्वानां यत्रोद्दीप्ते तु सौष्ठवं ।

स भावो मोदनो ज्ञेयो रसज्ञैस्तु सुबुद्धिभिः ॥

अथाधिरूढो भावो मादनः—

सर्वभावोद्गमोल्लासी सर्व्वानन्दविशारदः ।

राधायां ह्लादिनीसारो मोदनोऽयं विराजते ॥

अनुराग—राग ही क्षण क्षण में अतिशय चमत्कार कारक होकर नवीन अनुभव होने पर अनुराग होता है। भाव-अनुराग स्वसंवेद्य दशा को पाकर प्रकाशित पूर्वक यावदाश्रयवृत्ति होने से भाव होताहै ॥ भाव दो प्रकारके हैं रूढ़ तथा अधिरूढ़ है। जहाँपर सात्विक समूह उद्दीप्त है सो रूढ़ हैं। रूढ़भावोक्त अनुभावों से कोई अनिर्वचनीय विशिष्टता को प्राप्त होकर अनुभाव समूह दिखाते है सो अधिरूढ़ है। कोई-मोदन तथा मोहन भेद से अधिरूढ के दो भेद बताते हैं। सत्वों का आलम्बन से जहाँ अत्यन्त उद्दीप्त में सौष्ठव है सो मोदन है। समस्त भावों का उद्गम शाली, उल्लास शील, समस्त आनन्द का पण्डित,

अत्रायोग्ये भवेदीर्ष्या भोगगन्धे स्तवादयः।
कुत्रापि अयोग्यास्वीर्ष्या। कुत्रापि भोगसम्बन्धे स्तवादयः।
धन्याः पुलिन्दा त्यादयः॥ इतिस्थायिभावः॥ ६५॥

अथ शृंगारभेदः।

अथशृंगारभेद—

सम्भोगो विप्रलम्भश्चेति द्विविधः।
अयुक्तयो विप्रलम्भः संयुक्तयोः संभोगः।
तत्र विप्रलम्भः-विप्रलम्भो हि भोगस्य संवर्द्धकतयेष्यते॥
पूर्वानुरागो मानश्च नेत्रागोचरता तथा।
एतै र्जन्यो विप्रलम्भः संभोगस्यैव वर्द्धकः॥
तत्र पूर्वरागः—यः प्रेमा संगमात्पूर्वं दर्शनश्रवणाद्भवः।
पूर्वानुराग स ज्ञेयः परस्परगुणश्रुतिः॥

ह्लादिनीशक्ति का सार मादन है जो केवल श्री राधिका में विराजमान हैं इस भाव में अयोग्य वस्तु में इर्षा, भोग गन्ध में स्तवादिक अनुभाव है।—विशेष उज्ज्वल नीलमणि में दृश्य हैं॥६५॥

अब शृंगार भाव कहते हैं। सम्भोग विप्रलम्भ भेद से शृंगार द्विविध है। अयुक्त विप्रलम्भ संयुक्त संभोग है। भोग के संवर्द्धक ही विप्रलम्भ है पूर्वानुराग मान नेत्र अगोचर है इनसे विप्रलम्भ का जन्म तथा संभोग वर्द्धनकारी है। पूर्वराग —संगम के पहिले ही दर्शन तथा श्रवण से उत्पन्न जो प्रेम सो परस्पर गुण श्रवण कारक पूर्वराग है। पूर्वानुराग, संकल्पाख्य है। उसमें

पूर्वानुरागः संकल्पाख्यः तत्र श्रीकृष्णविषया
लालस उद्वेगजागर्य्यादयः ॥

मानाख्यो विप्रलम्भः ।—

कृष्णसम्बन्धविषये नेति नेति च यद्वचः
ईप्सितालिंगनादीनां निरोधो मान उच्यते ॥

सामदानभेदरसान्तरप्रणतिभिर्मानशैथिल्यं । नेत्रागोचरत्वं स्पष्टमेव । अत्रानुपयोगित्वादुपेक्षितमन्यत् नहि श्रीराधाकृष्णयोः प्राकृतरसपरिपाटी प्रवेशोऽपित्वलौकिकी। विप्रलम्भादिकं तु परिपाटीभेदेन कुत्रचिदाहार्य्येण कुत्रचित्परिहासेन कुत्रचित् श्रीकृष्णमित्रकृतेन कुत्रचित् सखीकृतेन विप्रलम्भः ।

सतु भोगरसोल्लास एव नतु विप्रलम्भस्ततश्च तदनुकूलाभावा ज्ञेया अत एवमपेक्षिता व्याधि मृत्यादयोऽवस्थाः । इदानींतनानां

श्रीकृष्ण विषयक लालसा, उद्वेग, जागर्य्या प्रभृति अनुभाव हैं। मान—कृष्ण सम्बन्धी विषय में नेति नेति वाणी द्वारा इच्छित आलिंगन प्रभृतिओं का निरोध मान है। साम, दान, भेद, रसान्तर, प्रणाम द्वारा मान की शिथिलता है। नेत्र अगोचरत्व स्पष्ट है। यहाँ अनुपयोगता के कारण वर्णन नहीं करते हैं। श्रीराधाकृष्ण में प्राकृतरस परिपाटिका प्रवेश नहीं है किन्तु अलौकिक परिपाटीका प्रवेश है। विप्रलम्भ परिपाटी प्रभृत कही स्वीकार से, कहीं परिहास से, कहीं श्रीकृष्ण के मित्र द्वारा कर्त्तृक कहीं सखीओं का होता है।

यह भोगरस का उल्लास विप्रलम्भ है इसलिये तदनुकुल भाव समूह ग्राह्य है। अतः व्याधि, मृति प्रभृति अवस्था अपेक्षित की

श्रीराधामाधवयोश्चरणसेवैव भक्तिरसप्रापियका ॥ ६६॥

अथसंभोगः— स्पर्शनालिंगनादीन मानुकूल्यान्निषेवया ।
राधामाधवयोर्भाव उद्रिक्तो भोग उच्यते ॥

स चतुर्विधः । संक्षिप्तः, संकीर्णः, सम्पन्नरतिः, समृद्धिमानिति ॥

संक्षिप्तः— राधा कृष्णौ तु संक्षिप्तान्साध्वसव्रीडितादिभिः ।
उपचारान्निषेवेते स संक्षिप्त इतीरितः ।

संकीर्णः— यत्र संकीर्य्यमानाः स्युर्व्यलिकस्मरणादिभिः ।
उपचाराः स संकीर्णः किञ्चित्तप्तेक्षुपेशलः ॥

सम्पन्नः— वियोगात् संगते कृष्णे भोगः सम्पन्न इष्यते ॥

समृद्धिमान्— श्रीराधाकृष्णयो क्वापि पारतन्त्र्याद्विपुक्तयोः
उपभोगातिरेको यः कीर्त्यते स समृद्धिमान्ः ॥

गयी है । अब श्रीराधाकृष्ण दोनों की चरण सेवा हि भक्तिरस प्राप्ति कारिणी है ॥ ६६ ॥

संभोग—अनुकूलमय भाव से स्पर्श आलिगंन प्रभृति की सेवन द्वारा राधामाधव दोनों के उद्रकत भोग संभोग है । संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न, समृद्धिमान भेद से चार प्रकार है । संक्षिप्त ।— श्रीराधाकृष्ण-दोनों भय तथा लज्जा से संक्षिप्तभावसे उपचार समूह सेवा करते हैं सो संक्षिप्त है । अलीक स्मरणादिओं से उपचार समूह संकीर्य्यमान होने से संकीर्ण है जैसे तप्त इक्षु का चर्व्वण है । वियोग से अर्थात श्रीकृष्ण मिलने पर जो भोग सो संपन्न है । अत्यन्त परतन्त्र वियोग प्राप्त श्रीराधाकृष्ण दोनों के जो मिलन से उपभोग का अत्यन्त सो समृद्धिमान है । स्वप्न में

स्वाप्नो भोगस्तु गौणः स तु व्रजादन्यत्रहि ।
अनुभावदशां प्राप्ता रतेः सर्वात्मना च ये ।
संक्षिप्ता अत्र गण्यन्ते भोगांकत्वेन पेशलाः ॥
संस्पर्शो दर्शनं जल्पो मार्गरोधनमेव च ।
रासवृन्दावनक्रीड़ा यमुनाजलकेलयः ।
घट्टे स्थितिश्च नौ क्रीड़ा घट्टकुञ्जादिलीनता ।
चौर्य्यक्रीड़ा वधूवेशधारणं छलसुप्तता ।
वधूवेशः पटाकृष्टिः संश्लेषश्चुम्बनं तथा ।
द्युतक्रीड़ा नखांकं च स्रस्तकेशसुयोजनं ।
विम्बाधरसुधापानं भूषणादेः कृतिस्तथा ।
पानसंवाहनाद्यास्तु वुधै र्ज्ञेया उपासनात् ॥
घनीभूतरतेः क्वापि वैचित्र्यं जायते क्वचित् ।

जो भोग सो गौण तथा व्रज से अन्यत्र है। सर्वात्मभाव से जो रति का अनुभाव दशा को प्राप्त है सो संक्षिप्त यहाँ पर गौण्य है और भोग चिन्ह से सुन्दर है।

संस्पर्श, दर्शन, कथोपकथन, मार्गरोध, रास, वृन्दावनक्रीड़ा, यमुना में जलकेलि, घाट (पनघट) में स्थिति, नावबिहार, घट में छिपना, कुञ्ज में छिपना, चौर्य्य क्रीड़ा, वधूवेश धारण, कपटशयन, वधूवेश, पटखींचना, आलिंगन, चुम्बन, द्युतक्रीड़ा, नखांक, बिखरे केश समेटना, विम्बाधरसुधापान, भूषणादि क्रिया, पान, चरणसेवा प्रभृति है। पण्डितगण उपासना द्वारा प्राप्तव्य होवे है। रति घनीभूत होने पर कोई कोई स्थल में वैचित्र्य अवस्था धारण करती है। श्रीकृष्ण निकट में रहते हुए भी रति के स्वभाव

श्रीकृष्णसंनिकर्षेपि रतेः किञ्चित्स्वभावतः।
विश्लेषबुद्धया चार्त्तिः स्याद्रतिर्वैचित्र्यमुच्यते।
शुकेन चरमेऽध्याये विवृतं सर्व्वसंमतं।
व्रजेत्वेकरसे ज्ञेयं वैचित्र्यं रासमण्डले।
गमनागमनं सर्वं मर्य्यादा प्रक्रिया मता ॥६७॥
इतिश्रीनारायणभट्टविरचितायांभक्तिरसतरंगिण्यां
मधुररसोल्लासश्चतुर्थः ॥

अथ हास्योक्तभक्तिरसः ॥

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः सभ्यानां रसतां गतः।
हासो हास्यरसः प्रोक्तो विकृतांगक्रियादिभिः।
अस्मिन्नालम्बनः कृष्णो वृद्धा बाला इतीरिताः ॥

श्रीकृष्णः—यथा कथचित् ❀

से विश्लेष भाव उत्पन्न होने पर अत्यन्त आर्ति बढ़ती है। इसीको वैचित्र्य कहते हैं श्री शुकदेव जी ने चरम अध्याय मे वर्णन किये हैं। यह समस्त पण्डितगणों के मत है। व्रज में किन्तु एक रस जानना। रास लिलादिओं मे वैचित्र्य है। गमन, आगमन सब मर्य्यादा प्रक्रिया है ॥ ६७ ॥

अब हास्य रस कहते हैं। निजोचित विभावादि द्वारा हास नामक स्थायी भाव सामाजिकों के हृदय में आस्वादित होकर हास्यरस से ख्यात होता है तथा अंगविकृत्यादि जिस में क्रिया है। कृष्ण, वृद्धागण, बालक समूह आलम्बन जानना। श्रीकृष्ण का यथा —हे मैया! भयानक, जर्जर, टूटे फुटे इस बाबाजी के पास नहीं

❀रागमार्गगुरोः मदुपास्यसिद्धान्तस्य महानुभावस्य जिनः श्रीरूपगोस्वामी चरणस्य भक्तिरसामृतसिन्धौ

यास्याम्यत्र न भीषणस्य सविधं जीर्णस्य शीर्णाकृते
र्मा त नैष्यति मां विधाय कपटादाधारिकायामसौ।
इत्युक्ता चकितात्तमद्भुतशिशावुद्वीक्ष्यमाणे हरौ
हास्यं तस्य निरुन्धतोऽप्यतितरां व्यक्तं तदा
सीन्मुनेः ॥ १ ॥

वृद्धाः— प्रसारय मुखं कृष्ण नवनीतं ददामि ते।
श्रुत्वा प्रसारिते वक्त्रे वृद्धया पुष्पमर्पितम् ॥
अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः ॥

निद्रालस्यादयो व्यभिचारिणः, श्रीकृष्णवाग्वेषचेष्टादय उद्दीपनाः हासरति स्थायी।

ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च
अन्त्यानामपहसितमतिहसितं तदत्र षट् भेदाः ॥२॥

जाऊँगा। यह छल से अपनी झोली में डाल कर मेरे को ले जायेगा ऐसा कह कर जब भय युक्त नेत्रों से उनको देखने लगे तब मुनि राजका रोका हुआ हास्य अत्यन्त बाहर प्रकाश होने लगा।१। वृद्धा-यथा।— हे कृष्ण! मुख फैला ओ माखन देऊंगो। सुन कर जब मुख फैलाने लगे तब वृद्धा ने खट्टा फुल मुख में डार दिनो। नेत्र संकोच, बदन में मन्दहास्य प्रभृति अनुभाव हैं। निन्द्रा, आलस्य प्रभृति व्यभिचारी भाव तथा श्रीकृष्ण के वचन, वेष, चेष्टा प्रभृति उद्दीपन हैं। स्थायी हासरति जानना। जेष्ठों के स्मित हसित, मध्यमों के विहसित अतिहसित, तथा अधमों का अपहसित अतिहसित होता है। हास्य को इस प्रकार ३ भेद हैं॥ २॥

ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्पन्दिताधरं ।
किञ्चिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः ।
मधुरस्वरं विहसितं सशिरः कम्पमवहसितं ।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्तांगं यदित्यतिहसितं ।
हास्यस्य विषयः क्वापि साक्षान्नैव निबध्यते ।
विभावादिबलादेव प्राप्यते रसवेदिभिः ॥
यथा—शिम्बीकम्बिकुचासि दर्दुरवधूविस्पर्द्धिनासाकृति
स्त्वं कीर्य्यद्रविदृष्टिरोष्ठतुलितांगारा मृदंगोदरी ।
का त्वत्तः कुटीले परास्ति जटिलापुत्रि क्षितौ सुन्दरी
पुण्येन व्रजसुभ्रुवां तवधृतिं हर्त्तुं न वंशी क्षमा ॥ २ ॥

नेत्र का ईषत् विकास अधर का स्पन्द होना स्मित है। दान्तों के किञ्चित् दृश्य होने से हसित है। मीठे स्वर से हँसना विहसित है। जिस हास्य में मस्तक काँपता है सो अवहसित जानना। नेत्रों से अश्रु के साथ हास्य अपहसित, तथा अंग का विक्षिप्त होना अतिहसित है। हास्य का विषय कहीं पर भी साक्षात् वर्णन नहीं करते हैं। विभावादिकों के बल से किन्तु वर्णन जानना। यथा।- हे जटिलापुत्रि कुटिले। सेम का बराबर लम्बे तो स्तन हैं। मेंडककी वधू को तिरस्कार करने वाली नासिका है। पुराणे कन्दु-आ के बराबर दृष्टि तथा तुम्हारे ओठ अंगार के बराबर काले हैं। मृदंग सदृश पेट है। इसके तुम्हारे सदृश पृथ्वी में सुन्दरी कौन है। जिससे व्रजगोपीओं के हृदयहारथी वंशी ने तुम्हारी धृति नहीं हरण की ॥ २ ॥

अथाद्भुतो भक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तचेतसि ।
अद्भुताख्यो भक्तिरसो विस्मयप्रापितो यदा ॥

श्रीकृष्णः आलम्बनः क्रियाः नेत्रविस्ताराश्रुपुलकादिः हर्षादिर्व्यभिचारी चेष्टा विशेषाद्याः उद्दीपनाः विस्मयरतिः स्थायी । सा च साक्षादनुमानाच्छ्रवणाद्वा यथा दवाग्नेर्मोचितानां विस्मयरतिः स्थायी ॥ ४ ॥

अथवीरभक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैर्नीतोत्साहं रतिर्यदि ।
भक्तानां मानसे वीरो तदा भक्तिरसो भवेत् ॥
युद्धदानदयाधर्म्मैश्चतुर्द्धा वीर उच्यते ।
चतुर्विधस्तु श्रीकृष्णो ह्यालम्बनतया मतः ।
भक्तानां तत्र चोत्साहः सर्वेषामेव सम्मतः ॥

अब अद्भुतरस कहते हैं । निजोचित विभावादिकों से विस्मय नामक स्थायीभाव भक्त हृदय में स्वादित हो कर अद्भुत नामक रस होता है । श्रीकृष्ण जिसमें आलम्बन हैं । नेत्र विस्तार, अश्रु, पुलक प्रभृति क्रिया है । हर्षादि व्यभिचार भाव, तथा चेष्टादिक उद्दीपन, और विस्मयरति स्थायी है । साक्षात्, अनुमान, तथा श्रवण से होता है । दवाग्नि से मोचित सखाओं के जैसे ॥ ४ ॥

निजोचित विभावादिकों से उत्साह नामक स्थायीभाव भक्तों के मानस में जाकर 'वीर-भक्तिरस' होता है । युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, तथा धर्म्मवीर से चार प्रकार का है । चार प्रकार से युक्त श्रीकृष्ण आलम्बन हैं । भक्तों को उत्साह होता है इसमें यही सब का मत है । श्रीकृष्ण की प्रीति के लिये उत्साहकारी कोई सखा,

युद्धवीरः— कृष्णस्य प्रीतये कश्चित सखोत्साहं करोति चेत।
प्रतियोद्धा मुकुन्दो वा सखा वा वीर उच्यते ॥

करथनास्फोटलगुडफलमालाग्रहणादि उद्दीपनं, हर्षगर्वामर्षाद्यो व्यभिचारिणः। असहाये युद्धेच्छा युद्धादचलनं अनुभावः।

लगुडालगुडिक्रीड़ा श्रीकृष्णेन सुहृद्वरैः।
आसीत्पराजितः कृष्णस्तनोनाचलदद्भुतः ॥

दानवीरः— दानवीरस्त्रिधा प्रोक्तो ह्यधिकारित्रिभेदतः।
मोक्ष.र्थी भक्तिकामश्च रसार्थी चाधिकारिणः।
मोक्षार्थी विधिना कृष्णे तद्भक्तब्राह्मणेऽपि च।
ददाति दित्सति सदा धृतिहर्षादिसंयुतः ॥५॥

स्मितभाषणगुणागुणविचारादिरनुभावः। विचेष्टादिरुद्दीपनः।

मोक्षो चतुर्विधो ज्ञेयो न त्वैक्यं तु कदाचन।
सर्वेश्वरस्तु श्रीकृष्णो विषयत्वेन संमतः॥

प्रतियोद्धामुकुन्द, तथा सखा युद्धवीर है। गर्व, आस्फोट, लाठी, फल, मालाग्रहणादिक उद्दीपन जानना। हर्ष, गर्व, अमर्ष, व्यभिचारिभाव तथा असहाय में युद्ध की इच्छा, और युद्ध से न भागना अनुभाव है। यथा लाठालाठि क्रीड़ा में सखाओं से श्रीकृष्ण पराजित हो गये। किन्तु उनका शरीर चलायमान नहीं हुआ। अधिकारि भेद से दानवीर तीन प्रकार है। मोक्षार्थी, भक्तिकाम, रसार्थी तथा अधिकारी है। मोक्षार्थी गण विधिपूर्वक धैर्य्य तथा हर्षादिक से युक्त होकर श्रीकृष्ण तथा भक्त और ब्राह्मणगण में द्रव्य देते है ॥५

मन्दहास्य, बोलना, गुण अगुण का विचार प्रभृति अनुभाव है। चेष्टा प्रभृति उद्दीपन जानना। मोक्ष चार प्रकार का है। कभी एकता नहीं मानना। सर्वेश्वर श्रीकृष्ण विषय है। उनके जो भक्त

ईश्वरस्यैव भक्तो यः स भक्तत्वेन संमतः ।
भक्तयर्थी भक्तमात्रं तु कांक्षे दानीयं सर्वदा ॥

अथरसार्थी— रसार्थी तु द्विधा ज्ञेयः सिद्धः साधक इत्यपि ।
कृष्णस्योद्भवकांक्षीसन् दापयेच्च ददाति च ।
सिद्धस्त्वत्र तु विज्ञेयो व्रजेश दिः सतां मते ।
साधकस्तु रसज्ञान् वै कांक्षते दानमानयोः ।
इतरस्मिन्तुदासीनो दानमाने च सर्वदा ।
नान्यस्य दानमानादेः प्रवेशो रसवर्त्मनि ।
मानं त्वेनकधा ज्ञेयं वासो भाषणवन्दने ।
आसनं भोजनं मैत्र्यं सम्बधीकरणं तथा ।
पाठनं पठनं चैव व्यवहारस्तथा परे ।

दयावीरः— कृपाद्रवन्मानसेन श्रीकृष्णायार्पयेत्तनुं ।
दयावीर इतिख्यातः सिद्धासिद्धविभेदतः॥उद्दीपनाः

हैं वह भक्त हैं तथा केवल भक्ती की कामना करते हैं उनको भक्तिकाम जानना। सिद्ध तथा साधक भेद से रसार्थी दो प्रकार के हैं। कृष्ण के सुख क लिये दान दिलाने तथा देने वाले सिद्ध हैं। व्रजराजादिक सिद्ध जानना। साधक गण किन्तु दान मान रसज्ञ गणों में चाहते हैं। तथा औरों में उदासीन रहते हैं। रस-मार्ग में औरों को दान मान का प्रवेश नहीं है। निवास, भाषण, वन्दन, आसन, भोजन, मित्रता, सम्बन्ध करण, पाठन, पठन, और व्यवहार से मान बहुत प्रकार है॥ कृपा से द्रवित मानस होकर श्रीकृष्ण के लिये शरीर अर्पण दयावीर है। सिद्ध, असिद्ध भेद से दो प्रकार के जानना। सौकुमार्य्यादिक उद्दीपन, स्वप्राण अर्पणादि

सौकुमार्य्यादयः। स्वप्राणार्पणादिना रक्षा विश्वासादयोऽनुभावाः औत्सुक्यादयो व्यभिचारिणः ॥ ६ ॥

अथधर्म्मवीरः— कृष्णैकतोषणे धर्म्मे यः सदा परिनिष्ठितः।
व्रजस्थ ब्राह्मणाः सर्व्वे धर्म्मवीरावलम्बकाः॥
उद्दीपना इह प्रोक्ताः सच्छास्त्रश्रवणादयः॥
अनुभावा नयास्तिक्यसहिष्णुत्वयमादयः॥

मतिस्मृत्यादयो व्यभिचारिणः। केचिद्धर्म्मवीरं न मन्यन्ते युद्धोत्साहरतिः, दानोत्साहरतिः, दयोत्साहरतिः, धर्म्मोत्साहरति रित्यादिस्थायी॥ ७॥

अथकरुणभक्तिरसः

अस्य करुणविप्रलम्भाद्भेदः। शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रसः।

से रक्षा, तथा विश्वासादिक अनुभाव, और औत्सुक्यादिक व्यभिचारि हैं॥ ६॥

श्रीकृष्ण के तोषण में निष्ठा रखने वाले व्रजवासी ब्राह्मण-गण धर्म्मवीर के आश्रय हैं। सत् शास्त्र श्रवण प्रभृति उद्दीपन, नीति, आस्तिक्यता सहिष्णुता, यमादिक अनुभाव है। मति, स्मृत्यादिक व्यभिचारिभाव जानना। कोई कोई धर्म्मवीर नहीं चाहते हैं। युद्धोत्साहरति, दानोत्साहरति, दयोत्साहरति, धर्म्मोत्साहरति क्रम से चार प्रकार वीर रसका स्थायीभाव है।७।

अब करुणरस कहते हैं। इस का करुण विप्रलम्भ से भेद है। शोक स्थायी होने का कारण जानना। विप्रलम्भ में संयोग

विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः संयोग हेतुकः।
निजोचित स्तु विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तमानसे।
गतः शोको भक्तिरसः करुणाख्यो भवेत्तदा।
अयमेव महानन्दः प्रेमतस्त्वनुभूयते।
अनिष्ट विषयः कृष्णस्तथा तस्य च वल्लभः॥
तथानवाप्तभक्तित्वाद् भक्तश्च विषयो मतः॥

तद्गुणक्रियादय उद्दीपनाः, भूपातक्रन्दनाद्योऽनुभावाः, वैव र्ण्योच्छ्वास निःश्वासचिन्ताद्याः व्यभिचारिणः श्रीकृष्णविषयाः॥

श्रीदशमे।— तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट
मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्त्ताः।
कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामाः
दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः॥

प्रियजनो यथा।— प्रियाणां धर्षणे कृष्णः शंखचूडेन निर्म्मिते।
वैवर्ण्यं चित्तसावल्यं प्रपेदे ऽतीव विह्वलः॥
एवमिदानीन्तनभक्तानां श्रीमूर्त्यादौ ज्ञेयं॥८॥

हेतुक रति स्थायी है। निजोचित विभावादिकों से शोक नामक स्थायीभाव भक्तों के हृदय में आस्वादित होकर करुण-भक्तिरस होता है। यह करुण होने से भी प्रेम के कारण महाआनन्द दायक है। अनिष्टविषय श्रीकृष्ण, तथा प्रियगण, तथा भक्तगण विषय है। उनके गुण तथा क्रियादिक उद्दीपन, पृथिवीपतन, क्रन्दन प्रभृति अनुभाव, विवर्णता उच्चनिश्वास, चिन्ता प्रभृति व्यभिचारि भाव श्रीकृष्णविषयक हैं॥

श्री हरि को कालिय नागके शरीर से वेष्टित तथा चेष्टा हीन से देखकर प्रियसखागण अत्यंत व्याकुल होने लगे कृष्ण में

अथरौद्रभक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तमानसे ।
नीता क्रोधरतिः स्थायी रौद्रो भक्तिरसो भवेत् ॥
कृष्णः प्रियोऽप्रियश्चेति क्रोधस्य विषयस्त्रिधा ।
आलम्बनं तु क्रोधस्य त्रितये व्रजवासिनः ।
प्रियेऽप्रियेऽपि भक्ताः स्युर्नतु कृष्णे कदाचन ।
हितवर्गस्य यः क्रोधः प्रविशोद्धतकृष्णयोः ।
कृष्णानुकूलतो ज्ञेयो ह्यतो भक्तिरसो भवेत् ।
असुरादौ तु यः क्रोधः प्रातिकूल्यात्तु रोधकः ।
यथा शास्त्रौ च पुत्रे च लोकस्य परिदृश्यते ॥६॥

अर्पित आत्मा, सुहृद्, अर्थ, कलत्र, कामनादिक वाले वह दुःख तथा शोक और भय से मोहित बुद्धि हो कर पृथिवी पर गिरने लगे। प्रियजन यथा ।--शंखचूड़ द्वारा स्त्रियों का धर्षण होने पर श्रीकृष्ण विह्वल होकर विषन्न मन हो गये । इसी तरह आधुनिक भक्तों का श्री विग्रह में भी जानना । ८॥ अब रौद्र भक्तिरस कहते हैं । निजोचित विभावादिओं से क्रोधरति नामक स्थायी भक्त हृदय में आस्वादित हो कर रौद्र भक्तिरस होता है । श्रीकृष्ण, प्रियजन, तथा अप्रियजन भेद से क्रोध के तीन प्रकार के विषय भेद हैं । व्रजवासियों के तीन प्रकार के विषयमें क्रोधका आलम्बन है । प्रिय तथा अप्रिय में भी भक्त होते हैं । हितकारक प्रिय वर्ग का क्रोध हित युक्त होने से अनुकूलात्मक है अतः भक्तिरस होता है असुरादिओं का क्रोध प्रतिकूलता के कारण रसका रोधक है ॥६॥

अयमर्थः ।—व्रजवासिनां श्रीकृष्णे हितेऽहिते च क्रोधः, अन्यभक्तानां हितेऽहिते च । सर्वत्र श्रीकृष्ण एव निमित्तं । जरत्यादीनां श्रीकृष्णे क्रोधः वध्वावलोकनादिना । हिते व्रजेश्वर्य्यादौ उलूखलवन्धनादिना यमलार्जुनमध्यश्रीकृष्णदर्शनेन । अहिते श्वसुरादिषु अहितक्रियया । अन्यभक्तानां तु भक्तान्तरे क्रोधः । सेवाकालाद्यतिक्रमेण एवमूह्यं सखादौ । सोल्लुण्ठहासवक्रोक्तिकटाक्षानादरादयः उद्दीपनाः हस्तनिःपेषणं दन्तघर्षणं रक्तनेत्रता, दन्तौष्ठतानिःश्वासभुग्नदृष्टिअधरकम्पाद्याः अनुभावाः स्तम्भादयः सात्विकाः सर्वे ॥ १० ॥

अथ भयानकभक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः पुष्टिं भयरति र्गता ।
भयानकाभिधो भक्तिरसो धीरैस्तु कथ्यते ।

इसका अर्थ यह है कि व्रजवासियों का श्रीकृष्ण पर हित तथा अहित में भी क्रोध होता है । अन्यभक्तों का भी हित अहित में है जानना । सर्वत्र श्रीकृष्ण ही कारण हैं । जरती वृद्धा-(जटिला-) दिकों का श्रीकृष्ण में क्रोध वधूप्रभृति संसर्ग से जानना । हित में श्री व्रजेश्वरी प्रभृति का जानना । जैसे उलूखल बन्धनादिक है । अहित में श्वसुरादिक है । और भक्तों का क्रोध सेवा-समय अतिक्रम प्रभृति कार्य्य से जानना । इस तरह सखाप्रभृति का वह है । उच्च स्वरसे हँसना वक्र बोलना, कटाक्ष, अनादर प्रभृति उद्दीपन है हाथ फटकारना, दन्त घर्षण, रक्तनेत्र, दन्तसे होंठोंको दाबना, निश्वास, भग्नदृष्टि, अधर कंपाना प्रभृति अनुभाव हैं । स्तम्भादिक समस्त सात्विक हैं ॥ १० ॥ अब भयानक रस कहते हैं । निजोचित विभावादिकों से भयरति नामक स्थायीभाव

कृष्णश्च दारुणश्चेति तस्मिन्नालम्बना द्विधा ।
दासादिषु कृतागस्सु कृष्णस्त्वालम्बनो मतः ।
दारुणा बान्धवाः केचिदनिष्टादेस्तु दर्शिनः ।
भयहेतो दर्शनाद्वा श्रवणाद्वा प्रकीर्तिताः ॥

कृतापराधेषु भक्तेष्वन्येषु च कृष्ण आलम्बनं, बन्धुषु श्रीकृष्णानिष्टहेतुदर्शनश्रवणस्मरणादिना बान्धवा एव दारुणा आलम्बनाः ।

कृष्णं गोपय नागेन्द्र ! असुराः त्रासयन्ति मां ।
पश्य पश्य बलिवर्द ! किं शून्यमिव तिष्ठसे ॥

इत्याद्युदाहार्यं । भ्रुकुट्यादयो उद्दीपनाः, मुखशोषणोच्छ्वासपरावृत्यावलोकनशरणान्वेषणाद्या अनुभावाः सात्त्विका स्तम्भादिरश्रुवर्जिता, दीनतादि र्व्यभिचारिणः, भयरतिः स्थायी अपराधतो भीषणोऽथवा भयं स्यात् ॥ ११ ॥

पुष्ट होकर भयानक नामक रस होता है। कृष्ण तथा दारुण गण आलम्बन है। कृतापराध दासों में श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। अनिष्टादिकदर्शी कोई बन्धुगण दारुण हैं। भय के हेतु दर्शन तथा श्रवण से होता है।

कृतापराध दयनीयभक्त जनों में श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। बन्धुओं में श्रीकृष्ण का अनिष्ट हेतु दर्शन तथा श्रवण और स्मरणादि से जानना। यथा हे नागेन्द्र ! श्रीकृष्ण को गोपन करो। असुर गण मेरे को पीड़ित कर रहे हैं। बलिवर्द (बिजार) इसको देखिये। शून्य के समान क्यों खड़े हो। भ्रूकुटि प्रभृति उद्दीपन, मुख शोषण, उच्चश्वास, फिरचलना, देखना, शरणजनावलोकन प्रभृति

अथ बीभत्सभक्तिरसः ॥

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैर्जुगुप्सा भक्तमानसे ।
पुष्टिं गता तु बीभत्सः स्थायी भक्तिरसो भवेत् ॥
अस्मिन्भक्तिरसे सर्वे भक्ता आलम्बना मताः ।

यथा— गतः कालो यत्र प्रसवदनन्तं सौख्यमनिशं
तथा भक्तप्राप्तं विषयसुखमास्वादितमभूत् ।
इदानीं कृष्णस्य प्रणयरसरंगे धृतमतेः
सुखे निर्वाणाख्ये भवति सहसा ष्ठीवनमतिः ॥

वक्त्रकूणन निष्ठीवन घ्राणसंवृत्ति धावनादयोऽनुभावाः, ग्लान्यादयो व्यभिचारिणः जुगुप्सा रतिः स्थायी । अयमर्थः सर्वभक्तानाम भक्तसम्बन्धे सर्वं भवतीति ज्ञेयं । इति द्वादशरसाः ॥ १२ ॥

अनुभाव, अश्रु वर्जित स्तम्भादि सात्विक दैन्यादि व्यभिचारि, भय रति स्थायी है । अपराध तथा भीषण वस्तु से भय होता है ॥११॥ अथ बीभत्सरस कहते हैं । जुगुप्सा नामक स्थायी निजोचित विभावादिकों से भक्त हृदय में पुष्ट होकर बीभत्स भक्तिरस होता है । इस रस में समस्त भक्त ही आलम्बन हैं, यथा-यह समय अतीत होगया है । जहाँ प्रसव अनन्त सुख निरन्तर था तथा समस्त विषय सुख मैंने आस्वादित किया । अब श्रीकृष्ण के प्रीतिरस में मन रम रहा है अब मैं निर्वाण सुख पर थूकता हूँ ।

मुख सिकोड़ना, थूथू करना, नाक सिकोड़ना, भागना प्रभृति अनुभाव हैं । ग्लानि प्रभृति व्यभिचारि जानना । जुगुप्सा रति स्थायी है । इसका अर्थ यह है समस्त भक्तों को असक्त सम्बन्ध में भाव होता है जानना । यह बारह रस हैं ॥ १२ ॥

अथ रसानां मैत्रवैरस्थितिः

रसयोस्तु द्वयोः स्थानं भवेद्गौणप्रधानतः ।
न प्राधान्येन विज्ञेयमित्येवं रसिकैर्मतं ॥

तदुक्तमारते—भावो वापि रसो वापि प्रवृत्तिवृत्तिरेव वा ।
सर्वेषां समवेतानां यस्य रूपं भवेद्बहु ।
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः सञ्चारिणो मता इति ।
शान्ते प्रीतस्तु वीभत्सः धर्म्मवीर सुहृन्मतः ।
शुचि भयानको रौद्रो युद्धवीरश्च शत्रवः ः
प्रीते दानदयावीरः शान्तवीभत्सकौ सुहृत् ।
वैरी शुचियुद्धवीरौ रौद्रोऽपि समयान्वितः ।
प्रेयो रसे शुचिर्हास्यं युद्धवीरः सुहृद्वरः ।
वीभत्सो वत्सलश्चेति रौद्रो भीष्मस्तु शत्रवः ॥
वत्सले हास्यकरुणौ भयानक इमे सुहृत ।
शुचिः प्रीतो युद्धवीर रौद्र इत्येव शत्रवः ॥

अब रसों का मित्र शत्रु वर्णन करते हैं गौण तथा प्रधान से रसके दो स्थान है। केवल प्रधान से नहीं है। यह रसिकों का मत है। भारत में कहा है भाव होय किम्वा रस होय अथ च प्रवृत्ति होय अथवा वृत्ति होय, सबका समवेत से जिसके रूप बहुत हैं सो स्थायी जानना, और सब सञ्चारी हैं। शान्त रस में प्रीत, वीभत्स, धर्म्मवीर सुहृत तथा शृंगार, भयानक, रौद्र, युद्धवीर शत्रु हैं। प्रीत रस में दानवीर, दयावीर, शान्त, वीभत्स सुहृत् तथा शुचि, युद्धवीर, समययुक्त रौद्र वैरी हैं। प्रेम रस में शुचि, हास्य, युद्धवीर, मित्र तथा वीभत्स वत्सल, रौद्र, भीम शत्रु हैं ॥१३॥

वत्सल रस में हास्य, करुण, भयानक, मित्र तथा शुचि, प्रीत, युद्धवीर, रौद्र शत्रु हैं। शृंगार रस में हास्य, प्रेय, अद्भुत, सुहृत्

शुचौ हास्यस्तथा प्रेयानद्भुतश्च सुहृद्वरः ।
बीभत्सो वत्सलश्चेति शान्तरौद्रभयानकाः ।
शत्रव इति शेषः ॥
हास्ये शुचिश्च बीभत्सः प्रेयान्वत्सलकः सुहृत् ।
भयानकोऽथ करुणः शत्रुत्वेनैव संगतौ ॥
अद्भुते पञ्च मुख्याः स्यु मित्राणीति विनिश्चयः
बीभत्सक रौद्रौ शत्रू वीरे हास्योद्भुतौ प्रेयान् ।
प्रीत एते सुहृद्वराः
करुणे वत्सलो रौद्रः सुहृज्ज्ञेयो मनीषिणा ।
वैरी हास्योऽस्य संभोगश्रृंगारश्चाद्भुतस्तथा ।
रौद्रस्य करुणोप्रोक्तो वीरश्चापि सुहृद्वरः ।
शत्रुः शुचिस्तथा प्रेयान् युक्त्या सर्वं विचारयेत् ॥
वस्तुतस्तु विरोधो हि कुण्ठोभावोऽत्र संमतः ॥१३॥
अत्यन्त बलवत्वेन कुण्ठो भावोऽत्र संमतः ॥
शत्रूणामपि मित्रत्वं पोषकत्वेन संमतं ॥
रसराजे तु कस्यापि नैव शत्रुत्वमोदयते ।
अन्यथा रसराजत्वं शुचौ नैवोपपद्यते ॥
सुधाकरे—द्विषौ श्रृंगारबीभत्सौ मिथो वीरभयानकौ ।
रौद्राद्भुतौ तथा हास्यकरुणौ प्रकृतिद्विषौ ।

तथा बीभत्स, वत्सल, शान्त, रौद्र, भयानक शत्रु है। अद्भुत में शान्त, हास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर मित्र तथा बीभत्स, रौद्र शत्रु हैं। वीररसमें हास्य, अद्भुत, प्रेय, प्रीत, मित्र तथा शत्रु है। करुण रसमें वत्सल, रौद्र, सुहृत् तथा हास्य, संभोगश्रृंगार, अद्भुत वैरी हैं। रौद्र में करुण, वीर सुहृत् तथा शुचि, प्रेय शत्रु हैं। यह बात विचार से जानना, वास्तविक विरोध ही रसका कुण्ठित भाव है॥ १३ ॥

अथ रसाभासः—

शृङ्गारो हास्यभूयिष्ठः शृङ्गाराभास ईरितः।
अद्भुतः करुणश्लेषादद्भुताभास उच्यते।
बीभत्सोऽद्भुतशृङ्गाराद् बीभत्साभास उच्यते।
स स्याद्भयानकाभासो रौद्रवीरोपगूहनादिति ॥१४॥

भावप्रकाशिकायां प्राकृतेषु च भक्तेषु रसो वाभासकोऽपि वा।
श्रीकृष्णे प्राप्य दुर्भावमज्ञानात् तत्स्वभावतः ॥
भक्तस्याज्ञात श्रीकृष्णभक्तयाः स्वभावात्।
व्रजस्थानां न कुत्रापि रसाभासो मनागपि।
बिन्दुबिन्दुतया यान्ति रसं वा रसिकाः सदा।
प्राकृतानां निबन्धानां रसोक्तिं नैव योजयेत् ॥
रससिद्धौ भक्तिरसे न शिवादेः प्रवेशिता ॥१५॥

इति श्रीनारायणभट्टविरचितायां भक्तिरसतरंगिण्यां
पञ्चमोल्लासः समाप्तः। समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

रसराज शृङ्गार में काई का शत्रुत्व नहीं है। अन्यथा शृङ्गार-रस में रसराजत्व नहीं हो सकता है। सुधाकर में—शृङ्गार, बीभत्स, वीर भयानक, रौद्र अद्भुत हास्य करुण प्रकृति से परस्पर शत्रु है अत रसाभास होते हैं. शृङ्गार हास्य प्रचुर से शृङ्गाराभास, अद्भुत, करुण संयोग से अद्भुताभास, बीभत्स अद्भुत, शृङ्गार से बीभत्साभास, भयानक रौद्र तथा वीर से युक्त होने से भयानकाभास होता है ॥१४॥

प्राकृत भक्तों में रस, किम्वा रसाभास; श्रीकृष्ण में भाव को प्राप्त होता है। व्रजवासियों में कहीं भी रसाभास नहीं है। रसिक जनों में बिन्दु बिन्दु से रस का सञ्चार है। परम-रसिक गण श्रीशुकादिक है। प्राकृत वस्तु में रस की योजना नहीं करना चाहिये ॥१५॥